रहीम

विजयेन्द्र स्नातक

भारतीय
साहित्य के
निर्माता

अस्तर पर मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य है, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। उनके नीचे बैठा है मुंशी जो व्याख्या का दस्तावेज़ लिख रहा है। भारत में लेखन-कला का यह संभवत: सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख है।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई०
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

रहीम

विजयेन्द्र स्नातक

साहित्य अकादेमी

Raheem : A monograph in Hindi by Vijayendra Snatak on the medieval Hindi poet. Sahitya Akademi, New Delhi (1994)
Rs. 15.00.

प्रथम संस्करण : 1990
द्वितीय संस्करण : 1993
तृतीय संस्करण : 1994

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय
रवीन्द्र भवन, 35, फिरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली-110001
बिक्री केन्द्र
'स्वाति', मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली-110001
क्षेत्रीय कार्यालय
जीवनतारा बिल्डिंग, चौथी मंजिल 23 ए/44 एक्स, डायमंड हार्बर रोड, कलकत्ता-700053
304–305, अन्ना सालई, तेनामपेट, मद्रास-600018
172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई-400014
106, जे. सी. मार्ग, बंगलौर-560002

मूल्य : पन्द्रह रुपये

मुद्रक : कौशिक इन्टरप्राइजज,
श्याम गली, मौजपुर,
दिल्ली-110053

अनुक्रम

परिचय

अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना मुग़लकाल के एक बहादुर योद्धा, कुशल राजनीतिवेत्ता तथा भारतीय सांस्कृतिक-समन्वय का आदर्श प्रस्तुत करनेवाले संवेदनशील मर्मी कवि थे। युद्ध-कला का वरदान उन्हें अपने पिता बैरम ख़ाँ से विरासत में मिला था, राजनीति का पाठ उन्होंने सम्राट् अकबर की पाठशाला में पढ़ा और काव्य-साहित्य उनकी नैसर्गिक प्रतिभा का पुण्य फल था। युद्ध-कौशल, राजनीति में प्रवीणता तथा काव्यकला की त्रिवेणी में डूबकर उन्होंने अपनी जीवनानुभूतियों को जिस रूप में व्यक्त किया वही उनका वास्तविक रचना-संसार है। इसे समझने के लिए रहीम के बहुआयामी व्यक्तित्व के विस्तार से गुज़रना होगा। किशोरावस्था से वृद्धावस्था तक रहीम का जीवन केवल घटनासंकुल ही नहीं वरन् घात-प्रतिघात के झंझावातों, घूर्णावर्तों और आरोह-अवरोह के वैविध्यपूर्ण संघर्षों से भरा हुआ है। जन्म से तुर्क, मज़हब से मुसलमान और नागरिकता से भारतीय होने पर भी रहीम इन सम्बन्धों की संकीर्ण सीमाओं में बँधे न होकर एक सच्चे मानव का प्रतिरूप थे। जाति, धर्म और देश की सीमाओं का उन्होंने अपनी काव्यात्मक रचनाओं में जिस उदात्त शैली से अतिक्रमण किया है वह संस्कृति-पुरुष का आदर्श है।

रहीम का जीवन-वृत्त एक सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक एवं राजनीतिक महापुरुष के रूप में अकबर और जहाँगीर के शासन काल में लिखे गये अनेक ग्रन्थों में, प्रामाणिक रूप से, विस्तार के साथ उपलब्ध होता है। अकबर और जहाँगीर के विषय में जो ग्रन्थ लिखे गये उनमें भी रहीम का घटनापूर्वक उल्लेख है। अबुल फज़ल का 'अकबरनामा' तथा 'आइने अकबरी', विसेंट स्मिथ लिखित 'अकबर द ग्रेट' (अंग्रेज़ी), आज़ाद लिखित 'अकबरी दरबार', (अनुवाद : रामचन्द्र वर्मा) 'तबकाते अकबरी' आदि पुस्तकों में सम्राट् अकबर की जीवनी के साथ रहीम का जीवन-वृत्त भी मिलता है। इसी प्रकार जहाँगीर की 'तुजुके जहाँगीरी', अब्दुलवासी का 'मआसिरे रहीमी', मुंशी देवी प्रसाद का 'ख़ानख़ानानामा', आज़ाद का 'अकबरी दरबार' आदि पुस्तकों में रहीम के जीवन-वृत्त पर पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। हिन्दी में रहीम के काव्य को लेकर लगभग दो दर्जन छोटे-बड़े ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं उनमें भी रहीम के सम्बन्ध में जानकारी मिलती है। 'रहिमन शतक' नाम से आठ

ग्रन्थ प्रकाश में आये हैं उनमें भी रहीम की जीवनी पर लिखा गया है। 'रहिमन विलास', 'रहिमन विनोद', 'रहीम रत्नावली', 'रहिमन कवितावली', 'रहिमन नीतिदोहावली', 'रहीम रत्नाकर', 'रहीम ग्रन्थावली', 'रहिमन चन्द्रिका', 'रहिमन विलास' (संकलक : राधाकृष्णदास) आदि ग्रन्थ भी रहीम के जीवन तथा कृतित्व के विभिन्न पक्षों से जुड़े हैं। रहीम रचित ग्रन्थों का सम्पादन एवं प्रकाशन भी हुआ है जिनमें भूमिका अथवा सम्पादकीय में रहीम के काव्य पक्ष पर प्रकाश डाला गया है। संक्षेप में, रहीम के जीवन-वृत्त तथा काव्य रचना विषयक जानकारी के लिए अब अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं। उन्हीं ग्रन्थों के आधार पर रहीम का जीवन-वृत्त पाठकों के लिए प्रस्तुत किया जाता रहा है।

जीवन-वृत्त : पूर्वज

अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना का जीवन नाना प्रकार के संघर्षों से ओतप्रोत एक घटनासंकुल व्यक्ति का चरित है। रहीम का पिता बैरम ख़ाँ तुर्क जाति के सैफ़ अली का बेटा था। बैरम ख़ाँ युवावस्था में ही हुमायूँ के पास आ गया था और अपने बुद्धि-कौशल से उसने हुमायूँ के यहाँ मुसाहिबी का दर्जा पा लिया था। उसने हुमायूँ की युद्धों में सहायता की और उसका विश्वासपात्र बन कर हुमायूँ के दुर्दिनों में स्वयं कष्ट सहकर वह स्वामिभक्ति का परिचय देता रहा। बैरम ख़ाँ को ईरान के बादशाह ने सन् 1544 में 'ख़ाँ' की उपाधि से विभूषित कर उसकी राजनीति विषयक योग्यता को स्वीकार किया था। यह ख़ाँ उपाधि ही ख़ानख़ाना शब्द से पहचानी जाती है। सन् 1554 में जब हुमायूँ ने हिन्दुस्तान पर विजय पाने के लिए प्रस्थान किया तब बैरम ख़ाँ भी उसके साथ था और सेनापति के रूप में अभियान का नियन्त्रण कर रहा था। हुमायूँ ने सन् 1542 में हमीदाबानो से विवाह कर लिया था और उससे ही सन् 1542 में अकबर का जन्म हुआ था। अकबर की देखभाल और शिक्षा-दीक्षा के लिए हुमायूँ ने अपने विश्वासपात्र बैरम ख़ाँ को नियुक्त कर उसका स्थान अपने राजदरबार में ऊँचा कर दिया था। हुमायूँ हिन्दुस्तान में अपनी लोकप्रियता की इच्छा से यहाँ के प्रतिष्ठित परिवारों से सम्बन्ध जोड़ना चाहता था। इसी इच्छा से उसने तेरह वर्षीय किशोर अकबर को बैरम ख़ाँ के संरक्षण में रखकर पंजाब प्रदेश का मालिक बना दिया। अपना और बैरम ख़ाँ का विवाह एक मेव जमींदार की दो कन्याओं से कर लिया। इसी मेव कन्या से 17 सितम्बर सन् 1556 में अब्दुर्रहीम का लाहौर में जन्म हुआ। बैरम ख़ाँ को इसी समय ख़ानख़ाना का अलंकरण प्राप्त हुआ और वह बाद में रहीम के नाम के साथ भी जुड़ गया।

हुमायूँ ने अपने जीवन काल में ही बैरम ख़ाँ को अकबर का अभिभावक बना दिया था। अतः हुमायूँ के निधन के बाद बैरम ख़ाँ ने लाहौर की राजगद्दी पर अकबर

को विधिवत् बैठाकर राज्यतंत्र अपने हाथ में ले लिया। बैरम ख़ाँ राजनीति-निपुण-चतुर व्यक्ति था। अतः उसने अकबर के साम्राज्य-विस्तार की योजनाएँ तैयार कीं और शनैः-शनैः उनमें सफलता प्राप्त करके वह अकबर का अभिभावक होने के साथ राज्य का संचालक बन गया। अकबर अपने शुभचिन्तक बैरम ख़ाँ का सम्मान करता था और उसके परामर्श से शासन-प्रबन्ध और युद्ध आदि में प्रवृत्त होता था। बैरम ख़ाँ बुद्धिमान और चतुर होने के साथ महत्त्वाकांक्षी भी था। उसी महत्त्वाकांक्षा को देखकर अकबर के कुछ दरबारी और घर-परिवार के लोग बैरम ख़ाँ से ईर्ष्या करने लगे। इन सबने मिलकर अकबर को बैरम ख़ाँ के विरुद्ध भड़काना शुरू किया और परिणामस्वरूप अकबर का मन बैरम ख़ाँ के प्रति सन्देह-शंकाओं से भर गया। वह बैरम ख़ाँ की महत्त्वाकांक्षाओं की कहानियाँ सुनकर बैरम ख़ाँ से अपना पिंड छुड़ाने की योजनाएँ बनाने लगा। अकबर के दरबारियों में शिया-सुन्नी विवाद भी सुलझ रहा था। बैरम ख़ाँ पर आरोप लगाया कि वह शियाओं के साथ पक्षपात करता है। अकबर को मौक़ा मिल गया और उसने एक दिन बैरम ख़ाँ को बुलाकर कहा, "आप काफ़ी बूढ़े हो चुके हैं इसलिए हज़ के लिए मक्का जा सकते हैं। हज़ की पूरी व्यवस्था कर दी गयी है। आपकी सेवाओं के उपलक्ष्य में हिन्दुस्तान में आपको उपयुक्त जागीर दे दी जायेगी जिससे कि आपके परिवार का भरण-पोषण हो सकेगा।" बैरम ख़ाँ इस परिस्थिति से भीतर-ही-भीतर अत्यन्त क्षुब्ध और कुपित हुआ और एक बार उसके मन में अकबर के प्रति विद्रोह का भाव भी उत्पन्न हुआ। लेकिन स्वयं ही अपनी दीर्घकालीन सेवा और स्वामिभक्ति को ध्यान में रखकर उसने खुला विद्रोह करना स्वीकार नहीं किया। किन्तु मन के किसी कोने में विद्रोह का भाव उसमें सुलगता रहा। अपने परिवार को छोड़कर वह पंजाब पहुँचा जहाँ वह शाही सेना से जूझ पड़ा। इस संघर्ष में वह शाही सेना से पराजित हुआ और अन्त में मक्का जाने को उद्यत हो गया। मक्का यात्रा के लिए वह गुजरात की तरफ़ चल पडा। पाटन पहुँचने पर उन्हें मुबारक ख़ाँ नाम के एक अफ़गान ने पुरानी दुश्मनी के कारण, बदला लेने की इच्छा से, अपने साथियों की सहायता से उसे मार डाला।

बैरम खाँ के शील-स्वभाव तथा चरित्र की प्रायः सभी लेखकों ने प्रशंसा की है और उन्हें एक सफल राजनीतिज्ञ, विद्वान्, योद्धा और कुशल शासक माना है। इसी बैरम ख़ाँ की सन्तान थे अब्दुर्रहीम। (जिनका जन्म 17 दिसम्बर 1556 को लाहौर में हुआ था) रहीम की जन्मकुण्डली मुंशी देवी प्रसाद ने 'खानखाना नामा' में दी है। जिसके आधार पर रहीम का जन्म संवत् 1613 शा० 1978 मार्गशीर्ष, शुक्ल पक्ष 14, सिद्ध किया है।

रहीम का जन्म और शैशव

जैसाकि हमने देखा है रहीम के पिता की मृत्यु बहुत ही अप्रत्याशित एवं अज्ञात परिस्थितियों में हुई। हज़ यात्रा के लिए जाते हुए गुजरात में एक पठान ने उन्हें मार डाला था। परिवार और परिजन बिछुड़ गये थे। उस समय रहीम अपनी माँ की गोद में चार वर्ष का अबोध बालक था। पिता के निधन से सारे परिवार पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा था। अकबर उस समय लाहौर में नहीं था। इसलिए रहीम परिवार के शुभचिन्तक मुहम्मद अमीना दीवाना, बाबाजम्बूर और ख़्वाजा मलिक अनेक मुश्किलों का सामना करते हुए रहीम को लेकर अहमदाबाद चले गये और चार मास तक रहे। अकबर को जब बैरम ख़ाँ के निधन और रहीम की माँ तथा परिवार की कठिनाइयों का पता चला तो उसने 1561 में उन्हें आगरा बुला लिया और अपने अभिभावक बैरम ख़ाँ के पुत्र रहीम के साथ वही स्नेहभाव रखा जो बैरम ख़ाँ ने कभी शैशवावस्था में अकबर के साथ रखा था। रहीम की शिक्षा का उच्चस्तरीय प्रबन्ध किया गया, परिवार के साथ भरण-पोषण की उपयुक्त व्यवस्था की गयी और समय आने पर अपनी धाय माहम अनगा की बेटी महाबानू से रहीम का विवाह करा दिया। इस विवाह से रहीम का रिश्ता उसी प्रकार बादशाह के ख़ानदान से जुड़ गया जिस प्रकार बैरम ख़ाँ का था। रहीम अब अकबर के दरबार में एक प्रतिष्ठित व्यक्ति का स्थान पा गया।

रहीम की शिक्षा का अकबर ने जो प्रबन्ध किया था वह उस युग में एक प्रकार से विलक्षण था। रहीम तो तुर्क जाति में पैदा हुआ था लेकिन उसकी जन्मभूमि भारत थी। अरबी-फ़ारसी तो उस समय मुस्लिम शासकों की भाषा थी किन्तु सेना आदि में तुर्क लोग भी थे। अतः तुर्की भाषा का ज्ञान आवश्यक था। रहीम ने तुर्की भाषा के साथ अरबी, फ़ारसी, संस्कृत और हिन्दी का भी ज्ञान प्राप्त किया और इन सब भाषाओं में पूर्ण दक्षता प्राप्त कर अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया। अब्दुल बाकी ने लिखा है कि 'ग्यारह वर्ष की आयु में ही रहीम ने काव्य-रचना प्रारम्भ कर दी थी।'

रहीम की माँ सुलताना बेगम ने अकबर द्वारा प्रदत्त सुविधाओं से पूरा लाभ उठाया और अपने बेटे रहीम को सब प्रकार सुयोग्य बनाने का प्रयत्न किया। रहीम के चिन्तन पर भारतीय संस्कृति की गहरी छाप का एक कारण उसकी माँ का धर्म परिवर्तन द्वारा मुसलमान होना भी है। अपने मूल हिन्दू-धर्म की बहुत-सी पौराणिक-धार्मिक मान्यताओं का ज्ञान रहीम को सम्भवतः अपनी माँ से ही प्राप्त हुआ होगा। सुलताना बेगम रहीम की मृत्यु के समय एक युवती थी और रहीम ही उसकी एकमात्र संतति थी। बैरम ख़ाँ को यह सन्तान (रहीम) साठ वर्ष की वृद्धावस्था में प्राप्त हुई थी। सुलताना बेगम ने अपने वैधव्य के आँसू पोंछकर अपने

बेटे रहीम को पाला था। रहीम के पालन-पोषण के समय अकबर के साथ उसका परिचय घनिष्ठ होता गया और अकबर ने उससे विवाह कर लिया। इस प्रकार रहीम अकबर का धर्मपुत्र भी हो गया। अकबर ने उसे हिन्दुस्तान की समेकित या मिली-जुली संस्कृति के साथ राजनीति की शिक्षा देकर पूरा भारतीय बनाने में योग दिया। कवि दिनकर ने रहीम के भारतीय होने की चर्चा करते हुए 'संस्कृति के चार अध्याय' पुस्तक में लिखा है, "अकबर के दीने इलाही में हिन्दुत्व को जो स्थान दिया होगा, रहीम ने कविताओं में उसे उससे भी बड़ा स्थान दिया। प्रत्युत् यह समझना अधिक उपयुक्त है कि रहीम ऐसे मुसलमान हुए हैं जो धर्म से मुसलमान और संस्कृति से शुद्ध भारतीय थे।"

जीवन-संघर्ष

योद्धा रूप में

रहीम के जीवन में सबसे पहले गुजरात प्रदेश पर आक्रमण करने का कठिन कार्य उपस्थित हुआ। यह कार्य उनके पौरुष और पराक्रम की परीक्षा का समय था। गुजरात में शत्रुसेना की संख्या बीस हज़ार थी और अकबर के पास कुल तीन हज़ार सैनिक थे। अकबर ने अपनी सेना को तीन भागों में बाँटा और सोलह वर्षीय रहीम को मध्य भाग में सेनापति का भार सौंपकर सम्मानित किया। गुजरात अभियान में रहीम ने बड़े शौर्य और पराक्रम का परिचय देकर शत्रुसेना पर विजय प्राप्त की। इस विजय से प्रसन्न होकर अकबर ने उन्हें पाटन की जागीर प्रदान की। इसके बाद राजपूताने की ओर गये और वहाँ शहबाज खाँ की सहायता से कुंभलनेर और उदयपुर पर कब्ज़ा कर लिया। अकबर रहीम की सेवा से अति प्रसन्न हुआ और इन्हें मीरअर्ज का सम्मान पूर्ण पद प्रदान किया। रहीम ने युद्ध-क्षेत्र में अपनी बहादुरी का परिचय देकर तथा अपनी सूझबूझ और योग्यता से अपने सहयोगियों को प्रभावित कर दरबार में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया था। जब कभी कोई उत्तरदायित्वपूर्ण पद रिक्त होता बादशाह का ध्यान रहीम की ओर ही जाता। अपने बेटे सलीम की शिक्षा का दायित्व भी अकबर ने इन्हें सौंपा। राजकाज में अपनी दक्षता की छाप छोड़ते हुए रहीम लोकप्रिय भी होते गये और इनका सार्वभौम सम्मान निरन्तर बढ़ता गया।

अकबर को गुजरात प्रदेश पर पहली चढ़ाई के समय जो सफलता मिली थी उसका श्रेय भी रहीम को था। उसी ने सुलतान मुजफ़्फ़र को बन्दी बनाया था लेकिन कुछ समय बाद वह भाग निकला और अपनी विशाल सेना के साथ उसने गुजरात प्रदेश के बहुत बड़े भाग पर अपना अधिकार कर लिया। मुजफ़्फ़र ने बहुत बड़ी फ़ौज तैयार कर ली थी। उसे हराना बहुत कठिन काम था। अकबर ने इस बार भी रहीम को ही चुना और गुजरात विजय के लिए दस हज़ार सैनिकों के साथ गुजरात भेज दिया। मुजफ़्फ़र के पास एक लाख पैदल और चालीस हज़ार सवार-सेना का विशाल बेड़ा था। रहीम ने इस युद्ध में अद्‌भुत सैन्य-कौशल का

परिचय देकर मुजफ़्फ़र की सेना को खदेड़ दिया और दुबारा पुनः गुजरात पर अपना अधिकार जमा लिया। इस बहादुरी से प्रसन्न होकर अकबर ने इन्हें पाँच हज़ारी मनसब और ख़ानख़ाना की उपाधि से विभूषित किया।

रहीम ने सन् 1573 से युद्ध-मैदान में प्रवेश किया था। उसके बाद इनका युद्ध-क्षेत्र से चिरकाल तक सम्बन्ध बना रहा। सन् 1584 में दूसरी बार गुजरात विजय की खुशी में इन्होंने अपने मित्रों, प्रशंसकों, साथियों और सेवकों को तरह-तरह के उपहार भेंटस्वरूप देकर अपने को सर्वस्वहीन बना लिया। अपने सर्वस्व को उपहार बनाते समय अपने घर-परिवार की भी चिन्ता न रही और महादानी के रूप में विख्यात हो गये। जो अपने लिखने का क़लमदान तक भेंट में दूसरों को दे सकता है उसकी दानशीलता को किस शब्द से अभिहित किया जाय। उस समय मुग़ल शासन की सर्वोच्च उपाधि 'वकील' भी प्राप्त हुई। जो टोडरमल के बाद इन्हें ही मिली थी।

गुजरात के बाद राजपूताना और सिंध पर विजय प्राप्त करने भेजा गया। सिंध पर विजय पाने पर मुलतान की जागीर इन्हें मिली। इससे पहले जौनपुर की जागीर भी रहीम प्राप्त कर चुके थे। युद्धों का सिलसिला जारी था और रहीम उनमें पूरी तरह जुटे हुए थे किन्तु युद्धविराम के क्षणों में जब कभी दो-चार मास का समय मिलता, ये अपनी साहित्य-साधना में रम जाते। ऐसे ही विश्राम के क्षणों में इन्होंने बाबर की आत्मकथा 'तुजुकेबाबरी' का तुर्की से फ़ारसी में अनुवाद किया। यह अनुवाद कार्य असाधारण प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति ही कर सकता था। इस बारे में जानकर अकबर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। इस कठिन साहित्यिक कार्य को सम्पन्न करने से रहीम अदबी दुनिया में मशहूर हो गये और इनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी।

रहीम की भाग्य लिपि में युद्ध और संघर्ष का विस्तृत बहु आयामी संकेत अंकित था। एक-के-बाद-एक युद्ध करने की विवशता के कारण लम्बे अर्से तक उन्हें चैन और आराम से घर बैठने का अवसर नहीं मिला। सन् 1593 में रहीम को दक्षिण विजय के लिए भेजा गया। इस अभियान में उनके सहायक शाहजादा मुराद थे। आक्रमण की तैयारी के समय रहीम और मुराद में अभियान के मार्ग को लेकर विवाद उठ खड़ा हुआ। चाँद नामक स्थान पर रहीम और मुराद विचार-विमर्श के लिए मिले किन्तु यह मिलन मैत्रीपूर्ण न होकर विरोध में बदल गया जिसके फलस्वरूप अहमद नगर में शाही सेना को चाँदबीबी के साथ बड़ी लाचारी की दशा में संधि करनी पड़ी। यह अपमानजनक स्थिति थी जो रहीम जैसे पराक्रमी और स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए अति कष्टप्रद थी। मुराद जैसे अहंकारी और अनुभवशून्य व्यक्ति के साथ सैन्य-संचालन जैसा जटिल कार्य करना रहीम के लिए कठिन था। मुराद के साथ सादिक़ खाँ जैसा दुष्ट प्रकृति का ईर्ष्यालु

सलाहकार था और वही रहीम के विरोध में उसे भड़काता और ग़लत रास्ते पर ले जाता था। रहीम ने इन धूर्त व्यक्तियों के साथ काम करते समय अपनी सहनशीलता और बुद्धिमत्ता का जो परिचय दिया वह बादशाह की नज़र में इन्हें ऊँचा उठानेवाला सिद्ध हुआ। दक्षिण में रहीम को अन्तिम विजय प्राप्त हुई और इस विजय से अकबर पर उनकी धाक बैठ गयी। अकबर ने मान-सम्मानपूर्वक उन्हें अलंकरणों से सुसज्जित कर दिया।

दक्षिण विजय की कहानी रोमांचकारी और अविस्मरणीय है। दक्षिण देश के युद्धों में रहीम के साथी सेनापति मुराद ने कभी साथ नहीं दिया। वह अपनी मूर्खता के कारण कपटी और मद्यप लोगों के साथ रहता था। रहीम को यह ढंग पसन्द नहीं था किन्तु राजा की ओर से भेजे गये सेनापति का विरोध करना भी ठीक नहीं था। अहमद नगर के गढ़ पर दो महीने तक डेरा डालने के बाद चाँदबीबी के साथ इन्हें सुलह करनी पड़ी थी जो इनके स्वाभिमान के प्रतिकूल थी। किन्तु राजनीति में इस प्रकार के प्रसंग आ ही जाते हैं। दक्षिण में आष्टी का युद्ध तो एक ऐतिहासिक घटना है। इस युद्ध में दक्षिण की समस्त सैन्य शक्ति अपनी अपार सेना के मुग़लों के सामने खड़ी थी। उनके पास पच्चीस हज़ार सैनिक थे और रहीम की सेना में कुल सात हज़ार सिपाही। रहीम ने इस युद्ध में अपने रणकौशल का जैसा परिचय दिया, वह विस्मयजनक है। दक्षिण की सेना में वीर सहेल खाँ था जो अपनी सैन्य-शक्ति के बल पर मुग़ल सेना को ध्वस्त करने पर तुला हुआ था। बीजापुरी तोपख़ाने के धुँआधार गोले बरस रहे थे और रहीम अपनी सेना की टुकड़ी के साथ बत्तीस घंटे तक अनथक लड़ते रहे और अन्त में विजय प्राप्त करके ही मैदान छोड़ा।

रहीम के जीवन में युद्धों का सिलसिला अभी जारी था। दक्षिण पर दोबारा विजय प्राप्त करने के लिए अकबर ने शाहज़ादा दानियाल को भेजकर दक्षिण कमान में रहीम को तैनात किया। अहमदनगर का क़िला अभी अजेय बना हुआ था। चाँदबीबी की सेना में पारस्परिक कलह उत्पन्न हो गया और एक सैनिक ने चाँदबीबी का बध कर दिया। ऐसी स्थिति में दानियाल के साथ रहीम ने अहमदनगर के क़िले पर विजय प्राप्त कर अपने रण-कौशल का पुनः परिचय दिया। अकबर गुणग्राही और नीतिज्ञ व्यक्ति था। उसने रहीम की योग्यता और कार्यकुशलता को भली-भाँति परख लिया था। वह जब कभी किसी बड़े कार्य में हाथ डालता, रहीम से परामर्श अवश्य करता और उसके सुझावों का आदर करता था। रहीम से ईर्ष्या करनेवाले व्यक्तियों की संख्या इसी कारण बढ़ती जा रही थी। राजघराने में भी रहीम से ईर्ष्या भाव रखनेवाले कुछ व्यक्ति हो गये थे। किन्तु रहीम अपनी स्वामिभक्ति और नीतिमत्ता के कारण किसी भी व्यक्ति से भयभीत नहीं थे। उनका व्यवहार सदैव सन्तुलित और संयमपूर्ण बना रहा।

रहीम का जामाता दानियाल अत्यधिक शराब पीने के कारण दक्षिण अभियान के समय ही दिवंगत हो गया। उसकी असामयिक मृत्यु से रहीम को बड़ा आघात लगा और दक्षिण विजय का उनका स्वप्न भंग हो गया। इसी बीच सम्राट् अकबर की भी सत्रह अक्तूबर सन् 1605 में मृत्यु हो गयी।

अपमान के दिन

अकबर की मृत्यु के बाद 24 अक्तूबर सन् 1605 को सलीम (जहाँगीर) राजगद्दी पर बैठा। यद्यपि सलीम का अपने पिता से बहुत समय तक विरोध रहा था किन्तु निराश और पराजित होकर उसने अपने पिता के सामने आत्मसमर्पण कर दिया था। अकबर और सलीम के बीच जिस समय अनबन थी और सलीम का आचरण उद्दंडतापूर्ण था उस समय रहीम अकबर के साथ थे और सलीम उनसे नाराज़ था। जब सलीम (जहाँगीर) सिंहासनारूढ़ हुआ तब रहीम के सामने कठिन समस्या आयी। जहाँगीर को प्रसन्न करने की इच्छा रखते हुए भी रहीम अपने स्वाभिमान के कारण कोई ऐसा काम नहीं कर सके जो उनकी आत्म-सम्मान को ठेस पहुँचानेवाला हो। जहाँगीर के समीप जो मुसाहिब और सामन्तगण थे वे भी रहीम से प्रसन्न न थे। उनके मन में भी रहीम के प्रति ईर्ष्या-भाव था। फलतः रहीम एक ऐसे वातावरण में फँस गये जिसमें न तो साँस लेते बनता था और न उससे बाहर निकलने का कोई उपाय था। रहीम ने जहाँगीर को प्रसन्न करने के लिए भारी भेंट भेजकर दरबार में उपस्थित होने की इच्छा व्यक्त की किन्तु जहाँगीर ने उस समय रहीम की उपेक्षा की ओर दरबार में आने की स्वीकृति नहीं दी। जहाँगीर के मन में रहीम के प्रति विद्वेष का जो बीज अकबर के समय ही बो दिया गया था वही शनैः शनैः अंकुरित होने लगा। जहाँगीर के दरबारियों ने इस ईर्ष्या के अंकुर को चुग़ली और शिकायतों से सींचना शुरू कर दिया। जहाँगीर के कुछ समय तक अपने दरबार से दूर रखा और वह रहीम के व्यवहार और आचरण की जाँच करता रहा। तीसरे जलूसी वर्ष में जहाँगीर ने रहीम को दरबार में बुलाया। रहीम दरबार में आये और अपने शिष्य सलीम को राजसिंहासन पर बैठा देखकर भाव-विभोर हो उठे। जहाँगीर ने रहीम के इस आगमन का उल्लेख 'जहाँगीर नामा' में इस प्रकार किया है :

> "एक पहर दिन चढ़ चुका था, जबकि खानख़ाना जो हमारे तवालीक (अभिभावक) होने के कारण उच्च पद पर आसीन रहे थे, बुरहानपुर से आकर सेवा में उपस्थित हुए। प्रसन्नता और आनन्द ने उसे ऐसा दबा रखा था कि वह यह नहीं समझ पा रहा था कि वह सर के बल आया है कि पैरों के बल। वह घबराकर हमारे पैरों पर गिर पड़ा। हमने दया और कृपापूर्वक उसके सिर

को उठाया और प्रेम के साथ आलिंगन कर उसके मुख को चूम लिया। वह हमारे लिए मोतियों की दो माला, कुछ लाल तथा पन्ने लाया था। उन सब रत्नों का मूल्य तीन लाख रुपये था।"

'जहाँगीरनामा'—हिन्दी अनुवाद : ब्रजरत्नदास।

जहाँगीर और रहीम का मिलन दोनों के चित्त का मैल धोने और एक-दूसरे को पास लाने में सहायक हुआ। रहीम की निःस्वार्थ सेवा और प्रतिभा से प्रभावित होकर जहाँगीर ने उसे पुनः दक्षिण भेज दिया और दस लाख रुपये, बारह हज़ार सवार तथा सर्वोत्तम घोड़ा देकर यह आशा बाँधी कि रहीम दक्षिण देश में मुग़ल सल्तनत के विस्तार के कार्य में जुट जाएँगे। रहीम के साथ जो सिपहसालार भेजे गये थे उनमें सैयद सैफ़ ख़ाँ प्रमुख थे। उनकी आयु रहीम के बेटे से भी कम थी और वह अनुभवशून्य था। रहीम अब बूढ़े हो चुके थे। तिरसठ वर्ष की आयु में जमकर युद्ध करना उनके लिए संभव न था। एक युवक के संरक्षण में वृद्ध रहीम का वर्चस्व अब ओजस्वी और प्रतापी रणबाँकुरे योद्धा जैसा नहीं था। सैयद सैफ़ ख़ाँ बारहा की अकुशलता के कारण अहमद नगर का जीता हुआ क़िला हाथ से निकल गया और इस पराजय का अपयश रहीम के मत्थे मढ़ दिया गया। विरोधियों ने जहाँगीर के कान भर दिये और रहीम को इस पराजय के लिए दोषी मानकर वापस बुला लिया गया। इसी घटना से रहीम के भाग्य ने पलटा खाया और जो सुख-सम्मान, ऐश्वर्य, सम्पत्ति, और प्रतिष्ठा उन्होंने अब तक अर्जित की थी उस पर आँच आने लगी। रहीम वृद्धावस्था में अपनी पारिवारिक मुश्किलों और राजनीतिक झंझटों से संघर्ष कर रहे थे। उनके चारों तरफ़ विपत्तियों के काले बादल मँडरा रहे थे किन्तु विपत्ति के इस वात्याचक्र में भी वे शान्त और सुस्थिर बने रहे, यह कम आश्चर्य की बात नहीं है।

जहाँगीर के शासनकाल में रहीम को लम्बे समय तक उपेक्षा और अनादर के साथ दिन काटने पड़े। जहाँगीर के समय भी दक्षिण देश में उपद्रव और अशान्ति के झंझावात चल रहे थे। उन्हें शान्त करने के जिए जहाँगीर की नज़र रहीम की ओर गयी और उसने पुनः रहीम को दक्षिण भेजने का निश्चय किया। रहीम को सम्मानपूर्वक दक्षिण भेजते समय रहीम के पुत्र शाहनवाज़ ख़ाँ को भी साथ भेजा और उसका मनसब बढ़ा दिया गया। रहीम के पुत्र शाहनवाज़ ख़ाँ तथा दाराब ने दक्षिण में बड़ी कुशलता से रणनीति तैयार की और अम्बर जैसे विद्रोही को परास्त कर अपनी योग्यता तथा रणनीति का परिचय दिया। इस युद्ध में रहीम और उसके पुत्रों को जो विजय प्राप्त हुई उससे प्रसन्न होकर सम्राट् जहाँगीर ने उनके पुत्रों के मनसब बढ़ा दिये। दक्षिण प्रदेश में मुग़ल साम्राज्य की धाक जमती चली गयी। बीजापुर के आदिलशाह और गोलकुंडा के कुतुबशाह ने पन्द्रह-पन्द्रह लाख रुपयों

की भेंट देकर बादशाह से संधि कर ली। अम्बर जैसा योद्धा भी ढीला पड़ गया और उसने भी अहमद नगर के क़िले की कुंजियाँ सौंप दी। यह सब जैसे-जैसे घटित होता गया, मुग़ल साम्राज्य का प्रभाव बढ़ता गया और छोटे-छोटे राज्यों के राजाओं ने संधि-पत्र भेजकर युद्ध से त्राण पा लिया। इस विजय संदर्भ में शाहजादे शाहजहाँ का भी सहयोग था अतः उन्हें भी बादशाह ने तीसहज़ारी मनसव और नज़दीकी कुर्सी पर बैठने का गौरव प्रदान किया। शाहजहाँ ने इस सम्मान के बाद अपने अधिकार का समुचित उपयोग कर विजित प्रदेशों से सुव्यवस्था का प्रबन्ध किया। उस व्यवस्था का सिपहसालार बनाया गया अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना को। इस प्रकार शाहजहाँ ने भी रहीम की प्रतिभा को पहचान कर उन्हें सम्मानपूर्वक यथायोग्य स्थान दिया। उसने शाहनवाज़ ख़ाँ को तथा उसके छोटे भाई को भी उच्च स्थान दिये। रहीम का यह बड़ा दुर्भाग्य था कि उसके पुत्रों को शासन में उच्च पद मिल रहे थे किन्तु अपने व्यसनों के कारण उसके पुत्र अकाल कवलित हो रहे थे। शाहनवाज़ ख़ाँ शराब की बुरी लत के कारण तैंतीस वर्ष की आयु में ही चल बसा। तभी कुछ दिन बाद दामाद की मृत्यु हो गयी। उससे पहले रहीम के पुत्र हैदरी का भी मद्यपान के कारण देहान्त हो चुका था और पत्नी भी गुजर चुकी थी। रहीम का जीवन विपत्तियों से तो घिरा था ही, पारिवारिक कष्टों ने बूढ़े रहीम को और अधिक कमज़ोर बना दिया।

जहाँगीर के शासनकाल में रहीम सम्मान और शान के ऊँचे पदों पर आसीन रहे थे। उन्होंने बादशाह की उपेक्षा भरी आँखें भी देखी थीं और आदर-सत्कार-पूर्ण आलिंगन पाश का सुख भी भोगा था। इन दोनों सम-विषम स्थितियों में रहते हुए रहीम ने अपना मानसिक संतुलन बनाये रखा था। विपत्तियों के पहाड़ उनके सिर पर टूटते रहे और बर्फ़ बनकर पिघलते रहे। रहीम की स्थिर चित्तता उन दिनों स्थितप्रज्ञ की-सी ही रही होगी। पुत्र, पत्नी, पौत्र, दामाद आदि की मौत की भीषण घटनाओं ने उन्हें किस सीमा तक विचलित किया होगा, यह शब्दातीत है।

इन भीषण यातनाओं के बीच एक मर्मान्तिक पीड़ाजनक घटना और घटित हुई जो अमानवीय होने के साथ रोमांचकारी दारुण घटना है। रहीम का घोर विरोधी महावत ख़ाँ शाही सेना का सेनापति बनकर जब बंगाल गया तो उसने बंगाल पर अधिकार कर रहीम के बेटे दाराब को पकड़ लिया और जहाँगीर के संकेत पर उसने दाराब का सिर काट दिया। सिर काटकर उसकी दानवता एक क़दम और आगे बढ़ी। उसने वीभत्स रूप में कटे सिर को थाल में रखकर रूमाल से ढककर रहीम के पास यह कहकर भेजा कि आपके लिए तरबूज़ पेश है। रहीम ने अपने बेटे के कटे सिर को देखकर अश्रुपूर्ण नेत्रों से इतना ही कहा—'तरबूज़ शाहीदी अस्तर'—यह एक शहीदी तरबूज़ है।

रहीम के जीवन में पीड़ा-यातनाओं के सन्दर्भ तो पग-पग पर आते रहे, परिवार में, दरबार में, युद्ध-संघर्ष में, राजनीति और व्यावहारिक नीति में उन्हें क्या-क्या नहीं देखना और झेलना पड़ा, यह अकथनीय है। इतिहासकारों ने रहीम के जीवन की इन घटनाओं का वर्णन करते हुए यह सिद्ध करना चाहा है कि रहीम के पास असीम साहस और शौर्य के साथ अद्भुत सहनशीलता, तितिक्षा और करुणा थी। अपने शत्रुओं को क्षमा करने की उदारता तो उनमें अगाध थी। मुग़ल वंश के दो बादशाहों को उन्होंने सिंहासन पर बैठा हुआ देखा। एक राजकुमार (शाहजहाँ) को अपने ही पिता और माता के साथ जूझते देखा। सेनापतियों और सिपहसालारों को बनते-बिगड़ते देखा और इन सब स्थितियों में अपना धैर्य खोये बिना, शान्त भाव से अपना उत्कर्ष और अपकर्ष भी देखा। युद्ध रहीम के लिए विधि-विधान था, राज्य व्यवस्था से जुड़ना और शासन में भाग लेना उनकी भाग्यलिपि में लिखा था, साहित्य और कला-प्रेम उनकी नैसर्गिक प्रतिभा का वरदान था।

संघर्षों के बीच

जहाँगीर के राज्य में अशान्ति, युद्ध और संघर्ष का वातावरण बना रहा। इस विक्षुब्धतापूर्ण वातावरण में रहीम को नाना प्रकार के कार्य सौंपे गये और उन्होंने बड़ी कुशलता के साथ उनका निर्वाह किया। जहाँगीर के मुसाहिब और संगी-साथी रहीम के प्रति दुर्भाव रखते थे। वे लोग रहीम का उत्कर्ष नहीं देख सकते थे। ईर्ष्या और जलन के कारण रहीम के कार्यों में बाधा डालने में उन्हें आनन्द प्राप्त होता था। रहीम इन कुटिलताओं से अपरिचित नहीं थे क़िन्तु शालीनतावश उन्होंने कभी प्रतिकार या प्रतिशोध का भाव नहीं दिखाया। बीस वर्ष राज्य करने के बाद जहाँगीर का ध्यान रहीम की ओर गया और उन्होंने रहीम को अपने दरबार में बुलाया। जहाँगीर का सेनापति महावत ख़ाँ भी उस समय दरबार में उपस्थित था। उसने भी रहीम के प्रति अति सम्मान और श्रद्धा का भाव व्यक्त किया। दरबार में उस समय जो लोग उपस्थित थे उन सबके मन में बूढ़े रहीम के प्रति आदर का ही भाव था। स्वयं जहाँगीर ने इस अवसर का वर्णन करते हुए 'जहाँगीरनामा' में लिखा है—

> "मैंने कहा कि जो-जो बातें घटित हुई हैं, वे सब भाग्य की बातें हैं, न तुम्हारे अधिकार की हैं, न हमारे अधिकार की। इस कारण अब तुम अपने मन में व्यर्थ लज्जित और दुःखी मत हो। हम अपने आपको तुमसे अधिक लज्जित और दुःखी पाते हैं। जो कुछ हुआ, सब भाग्य से ही हुआ। यह हमारे अधिकार की बात नहीं।"

इस पश्चात्ताप की भाषा में जहाँगीर के मन का विषाद और निर्यात का विधान ही बोल रहा है। उस समय जहाँगीर ने अपने पुराने कठोर व्यवहार के शमन के लिए रहीम को कन्नौज की जागीर तथा एक लाख रुपये भेंट किये तथा ख़ानख़ाना की उपाधि भी उन्हें वापस कर दी। रहीम जहाँगीर के इस कोमल एवं स्नेहपूर्ण व्यवहार से पसीज गया और उन्होंने अपनी अँगूठी पर यह शेर खुदवा लिया :

मेरा लुत्फ़े जहाँगीरी, जे ताई दीत ख़व्वानी।
दो बार: ज़िन्दगी बाद:, दीबार: ख़ानख़ानाना।।

––अर्थात् जहाँगीर की कृपा और ईश्वरीय सामर्थ्य से मुझे पुन: ज़िन्दगी और ख़ानख़ानानी मिली। जहाँगीर की दृष्टि में अब रहीम एक योग्य व्यक्ति थे जिसकी सेवा लेने में उसे कोई सन्देह-शंका नहीं थी। जब महावत ख़ाँ ने बग़ावत की और वह भागकर बच निकला तब रहीम ने स्वयं उसे दंडित करने का प्रस्ताव रखा और यह स्वीकार कर लिया गया। इस मोर्चे के लिए रहीम को ही सेनापति बनाया गया। इस प्रकार वृद्धावस्था में भी रहीम युद्ध के मैदान में कूद पड़े। इस युद्ध में विजय पाने पर रहीम को महावत ख़ाँ की जागीर वेतन रूप में दे दी गयी और प्रचुर मात्रा में बहुमूल्य उपहार भी भेंट किये गये। इसी समय अजमेर का सूबा भी सेनासहित प्रदान कर दिया गया।

रहीम ने अपने जीवन में कभी सुख-सन्तोष की साँस नहीं ली। किशोरावस्था से वृद्धावस्था तक युद्ध और राजनीतिक संघर्षों में उन्हें जूझना पड़ा। पारिवारिक दृष्टि से भी वे सुखी नहीं रहे। पत्नी, चारों पुत्र और दामाद की मृत्यु का शोक उनके साथ बना रहा। जवान बेटों को खोकर भी रहीम रणभूमि में अडिग भाव से खड़े रहे, यह कम आश्चर्य की बात नहीं है। रहीम ने अपने पुत्र का कटा सिर अपनी आँखों देखा, अपने पौत्रों का बध देखा और देखा निर्मम हत्याओं का भीषण हाहाकार। रहीम ने अपने जीवन में ऐश्वर्य का भोग नहीं किया। धन-ऐश्वर्य उनके पास आता-जाता रहा किन्तु विलास की ओर उनका ध्यान नहीं गया। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में वे लाहौर में थे किन्तु उनकी इच्छा दिल्ली में ही प्राण छोड़ने की थी। लाहौर से बीमारी की हालत में ही दिल्ली पहुँचे और सन् 1627 ई० के अप्रैल मास में उनका प्राणान्त हो गया। मरण के समय उनकी आयु साढ़े इकहत्तर वर्ष की थी। दिल्ली में हुमायूँ के मकबरे के समीप उन्होंने अपनी बीवी का मकबरा बनवाया था, उसी मकबरे में इन्हें भी दफ़नाया गया। आज भी यह मकबरा खड़ा है और एक सच्चे भारत सपूत के पार्थिव शरीर को अपने आँचल में दबाये उसकी याद को ताज़ा कर रहा है। इस मकबरे में उस महान विभूति का पार्थिव शरीर दबा हुआ है जो अपने उदात्त चरित्र, अद्‌भुत प्रतिभा, धार्मिक सहिष्णुता और साहित्यिक संवेदना के कारण सदैव स्मरण किया जाता रहेगा।

रहीम की संघर्षपूर्ण जीवन-यात्रा को देखने पर यह विचार पैदा होना स्वाभाविक है कि इतनी विषम परिस्थितियों में वे किस प्रकार शान्त-संयत रह सके। रहीम के पुत्र युद्ध-क्षेत्र में अपने पिता के समान ही जुझारू योद्धा थे। उन्होंने कई युद्धों में विजय प्राप्त कर रहीम का नाम ऊँचा किया था। अकबर के शासन काल में रहीम को सम्मानपूर्ण पद, प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य-सम्पत्ति का सुख मिला था। अपने प्रारम्भिक युद्धों में रहीम को कभी पराजय का मुख नहीं देखना पड़ा। अपनी प्रौढ़ावस्था तक रहीम को न तो राजकीय कोप का भाजन होना पड़ा और न उनकी अपराजेयता पर कोई चोट पहुँची। इसी अपराजेय भावना ने उन्हें उत्साह, उमंग, उल्लास और आनन्द से विभोर बनाये रखा। हाँ, उनका यह आनन्द-उल्लास वृद्धावस्था में, जहाँगीर के शासन काल में नष्ट होने लगा। और अपमान तथा तिरस्कार के बादल घिरने पर वे जीवन के प्रति निराश हो गये। इसी समय उनका ध्यान काव्यसृजन की ओर गया। उनके पास जीवन का व्यापक अनुभव था। सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, आनन्द-उल्लास, सब-कुछ उनके अपने जीवन में व्याप्त रहा था। सत्ता का सुख उन्हें भरपूर मिला था, वे दीवान के पद पर रहे थे, 'वज़ीर-उल-मुल्क' की पदवी भी पायी थी; गाज़ीपुर, कन्नौज और अजमेर की जागीर भी उन्हें मिली थी। हीरे-मोती, हाथी-घोड़े, धन-दौलत से उनका घर भरा रहता था। दरबार में उनका सम्मान था, अकबर तो उन्हें पुत्र के समान ही मानता रहा था। रहीम अपने यशस्वी कारनामों से ख्याति की चरम सीमा पर पहुँचे थे किन्तु वृद्धावस्था में ऐसा भी समय आया जब उन्हें कष्ट और पीड़ा के साथ दुर्दिन देखने पड़े। जहाँगीर और शाहजहाँ के बीच विरोध होने पर रहीम ने शाहजहाँ का पक्ष लिया और जहाँगीर का कोप-भाजन बनना पड़ा। इन सम-विषम स्थितियों में बहत्तर वर्ष की लम्बी आयु पाकर रहीम ने अपनी जीवन-यात्रा सामान्यजन के समान पूरी नहीं की प्रत्युत् इन परिस्थितियों में वे एक असाधारण महामानव के रूप में उभरे और संसार में अपनी कीर्ति-पताका फहरा गये।

रहीम का प्रभावी व्यक्तित्व

रहीम अपने बुद्धि-कौशल और रण-कौशल के कारण ही प्रभावशाली व्यक्ति नहीं थे वरन् उनका शारीरिक सौन्दर्य भी आकर्षक था। इतिहास लेखकों ने जहाँ उनकी नीतिकुशल, कलामर्मज्ञ, साहित्यवेत्ता के रूप में प्रशंसा की है वहाँ उनके उन्नत ललाट, भव्य भाल, पुष्ट देहयष्टि और स्वस्थ-सुन्दर अवयवों का भी चित्ताकर्षक वर्णन किया है। उनका मुखमंडल तेजोद्दीप्त रहता और उससे सौन्दर्य की रश्मियाँ फूटती थीं। अकबरी दरबार के लेखक आज़ाद ने रहीम की प्रशंसा करते हुए लिखा है—

"रहीम अपने आकर्षक सौन्दर्य से स्वजनों को ही नहीं, राह चलते पथिकों को भी आकर्षित करते थे। अनेक युवतियाँ उनके सौन्दर्य पर मोहित थीं।"

ऐसी अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं जिनमें रहीम के प्रति युवतियों के आकर्षण की कथाएँ हैं। रहीम सौभाग्यशाली व्यक्ति थे जिन्हें विधाता ने जो अनुपम रूप-सौन्दर्य प्रदान किया था वह वृद्धावस्था तक बना रहा और अपने शिष्ट, शील-स्वभाव के साथ वे अपने स्वास्थ्य की भी रक्षा करते रहे। सेनानायक के रूप में जीवन-भर जूझते रहने पर भी उन्होंने अपनी शरीर-सम्पदा को अक्षुण्ण बनाये रखा। उनके रूप-सौन्दर्य का वर्णन कवि गंग ने एक दोहे में इस प्रकार किया है—

गंगगौंछ, मौछें जमुन, अधरन सरसुति राग।
प्रगट ख़ानख़ानान के, कामद वदनु प्रयाग॥

—अर्थात् रहीम का मुख-मंडल कामद प्रयाग है इसके गोरे गालों को गंगा, काली मूछों को जमुना तथा अरुणारे (लालिमापूर्ण) अधरों को सरस्वती समझना चाहिए।

यह शरीर-सौन्दर्य रहीम को ईश्वरीय देन थी। इस शारीरिक सौन्दर्य के साथ रहीम के पास अन्य अनेक विद्याओं और कलाओं का भी भंडार था।

कला-प्रेमी रहीम

रहीम को एक योग्य सेनापति के रूप में युद्ध-परायण देखकर यह विस्मयजनक अवश्य है कि वे ललित कलाओं के साथ अपना घनिष्ठ सम्बन्ध किस प्रकार निभाते रहे। उनके अपने निजी दरवार में कला-प्रेमियों का ताँता लगा रहता था। संगीत, नाटक, स्थापत्य, मूर्ति और काव्यकला में उनकी असाधारण गति थी और इन कलाओं की बारीकियों से परिचित ही नहीं, इनके पूरे जानकार और प्रेमी थे। जहाँगीर ने रहीम के कला-प्रेम के विषय में 'तुजुके जहाँगीरी' में लिखा है—

"ख़ानख़ाना योग्यता और गुणों में सारे संसार में अनुपम था। अरबी, तुर्की, फ़ारसी और हिन्दी भाषाएँ जानता था। अनेक प्रकार की विद्याओं के साथ ही भारतीय विद्याओं का अच्छा ज्ञान रखता था। फ़ारसी और हिन्दी में बहुत अच्छी कविता करता था। पूज्य पिता (सम्राट अकबर) की आज्ञा से 'वाकेआत बाबरी' का तुर्की से फ़ारसी भाषा में अनुवाद किया था। कभी कोई शेर, कभी कोई सवाई और कभी कोई ग़ज़ल भी कहता था।"

'वाकेआत बाबरी' के अनुवाद का कई लोग पहले प्रयास कर चुके थे किन्तु कोई सफल नहीं हुआ था। रहीम के अनुवाद से अकबर अत्यधिक प्रभावित हुआ और फ़ारसी भाषा के विद्वानों में रहीम की विद्वत्ता की धाक जम गयी। कुछ इतिहासकारों ने रहीम की ख्याति के कारणों में इस अनुवाद को भी स्थान दिया है।

'तबकातेनासिरी' के लेखक निज़ामुद्दीन बख्शी ने अब्दुर्रहीम का परिचय देते हुए लिखा है—

"इस समय खानखाना की उम्र 37 वर्ष है। दस वर्ष हुए इसने खानखाना का मनसब और सेनापति का पद प्राप्त किया था। इसने बहुत बड़ी-बड़ी सेवाएँ की हैं और बड़े-बड़े युद्धों में विजयी हुआ है। इस सुयोग्य और मान्य पुरुष के ज्ञान, विद्या और गुणों के सम्बन्ध में जो कुछ लिखें, वह सब सौ में-से एक और बहुत में-से थोड़े हैं। इसने सब लोगों पर दया करने का गुण, बड़े-बड़े विद्वानों-पंडितों की शिक्षा, फ़कीरों का प्रेम और कविहृदय अपने पिता से उत्तराधिकार में पाया है। लौकिक ज्ञान और गुण की दृष्टि से इस समय दरबार में इसके जोड़ का कोई अमीर नहीं है।"

रहीम के शील-स्वभाव पर प्रकाश डालनेवाली अनेक दन्तकथाएँ प्रचलित हैं। अपने मित्रों के साथ सद्भाव रखना और उनका आदर तो प्रत्येक व्यक्ति करता है किन्तु रहीम उन विलक्षण व्यक्तियों में थे जो अपने शत्रु या विरोधियों के प्रति भी सम्मान और प्रेम का भाव रखते थे। अबुल फज़ल से रहीम की मित्रता थी और रहीम उनकी विद्वत्ता की प्रशंसा करने में न थकते थे। किन्तु जब रहीम की ख्याति सर्वत्र फैलने लगी और दरबारियों में इनके प्रति ईर्ष्या भाव पैदा हो गया तब अबुल फ़ज़ल भी उसी वर्ग में मिल गये और रहीम को बाग़ी तक कह दिया। लेकिन रहीम ने इस दोषारोपण को शान्तिपूर्वक सहन कर लिया और अबुल फ़ज़ल के प्रति कोई दुर्भाव नहीं रखा। ऐसी भी किंवदन्ती प्रचलित है कि किसी पंडित त्रिशूली ने रहीम को एक दिन नीतिविषयक स्वनिर्मित एक श्लोक सुनाया—

प्राप्य चलानधिकारान् शत्रुषु मित्रेषु बंधुवर्गेषु।
नापकृतं नोपकृतं न सत्कृतं किं कृतं तेन्॥

—अर्थात् जिसने चल अधिकार पाकर शत्रु के साथ अपकार, मित्र के साथ उपकार और बंधु-बांधव के साथ सत्कार नहीं किया, उसने कुछ भी नहीं किया।

खानखाना ने श्लोक सुना और इसकी दूसरी पंक्ति को अपने उच्चाशय के साथ इस प्रकार बदल दिया—

नोपकृतं नोपकृतं नोपकृतं किं कृत तेन।

—अधिकार पाकर जिसने शत्रु, मित्र और बंधु-बांधव के साथ उपकार नहीं किया उसने कुछ भी नहीं किया। रहीम की उदार भावना और सदाशयता की यही कसौटी है। अबुल फ़ज़ल ने ठीक ही लिखा है—

"तलवार और कमान को यदि बोलने की शक्ति होती तो वे तुम्हारे (रहीम के) भुजबल का हज़ार बार बखान करते। रहीम के बाहुबल की प्रशंसा के साथ उनके बुद्धिबल की भी इसी प्रकार इतिहास लेखकों ने प्रशंसा की है।"

दानवीर रहीम

अब्दुर्रहीम स्वभाव से उदार होने के साथ व्यवहार में दानी व्यक्ति थे। उनकी दानवीरता की प्रशंसा अनेक जनश्रुतियों में प्रसिद्ध है। समकालीन अनेक कवियों ने इसका बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। इनकी दानवीरता हृदय की सच्ची प्रेरणा के रूप में थी। कीर्ति-कामना से उसका कोई सम्बन्ध नहीं था। वे धनदान करने बैठते तो रुपयों की ढेरी लगाकर बैठते और याचक रूप में आये लोगों को बिना देखे मुट्ठी भर-भर रुपये दे देते थे। दान देते समय आँख उठाकर ऊपर देखना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। इस सम्बन्ध में गंग कवि और रहीम के बीच हुआ एक संवाद जनश्रुति में प्रसिद्ध है। गंग कवि ने रहीम से पूछा—

सीखे कहाँ नवाबजू, ऐसी दैनी देन।
ज्यों-ज्यों कर ऊँचा करो त्यों-त्यों नीचे नैन॥

रहीम ने बड़ी शालीनता के साथ उत्तर दिया—

देनदार कोऊ और है, भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम हम पर करें, याते नीचे नैन॥

लोग रहीम को दानी कर्ण का अवतार समझते थे। उनकी दृष्टि में रहीम कल्पतरु थे जिससे कुछ भी माँगा और पाया जा सकता था। इस दानवीरता के कारण कभी-कभी उन्हें द्रव्य का अभाव भी झेलना पड़ता था। जब जहाँगीर के शासन-काल में उन्हें दुर्दिन देखने पड़े तब याचकों के लिए उन्होंने अपने मित्रों, सरदारों और नवाबों से ऋण भी लिया किन्तु याचकों को कभी निराश नहीं किया। रहीम अपने विपत्ति-काल में राज्याश्रय छोड़कर एकान्त में रहने लगे थे। संभवतः याचकों की इच्छापूर्ति करना उनके लिए कठिन हो गया था। अपनी विपन्नावस्था का उन्होंने एक दोहे में बड़ा मार्मिक वर्णन किया है—

ए रहीम दर-दर फिरहि, माँगि मधुकरी खाहि ।
यारो यारी छोड़िए, वे रहीम अब नाहि ॥

रहीम के दान देने की शैली अपने ढंग की थी। वे केवल द्रव्य से ही याचकों की इच्छापूर्ति नहीं करते थे वरन् अपने साथ सैकड़ों को भोजन कराते थे। यह भी किंवदन्ती है कि भोजन की थालियों में चाँदी-सोने के सिक्के छिपाकर रख देते थे ताकि भोजन के बाद बिना माँगे ही भोजन करनेवाले को प्राप्त हो जाय। रहीम के पास धन माँगने वाले याचक भी तरह-तरह के होते थे। कोई याचक अपनी बेटी के विवाह के लिए धन माँगने आता, कोई किसी धार्मिक अनुष्ठान के लिए याचना करता, कोई रहीम की दानशीलता की परीक्षा के लिए ही याचना करता। एक प्रसिद्ध किंवदन्ती है कि एक बार एक याचक शस्त्र-सज्जित होकर रहीम के मार्ग में खड़ा हो गया। उसने अपनी पगड़ी में दो लम्बी कीलें लगा रखी थीं। रहीम ने इन कीलों के बारे में उस युवक से पूछा कि इनकी क्या उपयोगिता है? वह युवक वास्तव में एक याचक था जो रहीम से धन माँगने आया था। उस युवक ने उत्तर दिया, "ख़ानख़ाना साहब! एक कील उस मालिक के माथे में ठोकने के लिए है जो अपने सेवकों को ठीक तरह वेतन न देकर तंग करता है और दूसरी उस सेवक के लिए है जो मालिक से पूरा वेतन लेकर भी सच्चाई के साथ सेवा करने से जी चुराता है।" रहीम ने इस याचक की बात समझ ली और उसके जीवन-भर का पूरा वेतन उसे देकर कहा, "लीजिए, हमने आपकी एक कील का बोझ तो हल्का कर दिया, दूसरी कील का बोझ आपके अधिकार में है, उसे उतारने का स्वयं प्रबन्ध कीजिए।"

रहीम ने दक्षिण विजय के एक युद्ध के बाद यह संकल्प किया था कि मैं इस युद्ध में यदि विजयी हुआ तो जो धन-सम्पत्ति मुझे प्राप्त होगी मैं उसे अपने सैनिकों में वितरित कर दूँगा। युद्ध में रहीम विजयी हुए और अपार धन-दौलत उनके हाथ लगी, जिसे उन्होंने अपने मुक्तहस्त से दान कर दिया। एक अभागा सैनिक धन-वितरण के समय उपस्थित नहीं था। उसे कुछ भी न मिला तो दुःखी मन से वह रहीम के दरबार में पहुँचा। सारी सम्पत्ति दान करने के बाद रहीम के पास कुछ भी नहीं बचा था, केवल एक क़लमदान शेष था जो उसके लिखने-पढ़ने का साधन था। रहीम ने उस सैनिक को वह क़लमदान देकर अपनी दानशीलता की रक्षा की। ऐसी प्रसिद्धि है कि सम्पत्ति को लुटा देने के कारण उनके साथियों ने बादशाह से रहीम की शिकायत की और बादशाह की नाराज़गी की चिन्ता किये बिना वे अपनी दानवीरता पर वे सदैव अडिग बने रहे।

रहीम कलाकारों और काव्य-प्रेमियों का बहुत सम्मान करते थे। यदि कोई कलाकार अपनी किसी कलाकृति को लेकर उनके दरबार में पहुँचता तो वे उसे ऊँचे आसन पर बिठाते और कलाकृति का मूल्य जानकर उस मूल्य से अधिक धन

देकर कला की प्रतिष्ठा करते। कवियों के प्रति उनका सम्मान भाव अतुलनीय था। फ़ारसी, हिन्दी और संस्कृत के कवि उनके दरबार में प्रायः पहुँचते रहते थे और अपनी रचनाओं पर दक्षिणारूप में आशा और इच्छा से कहीं अधिक राशि पाकर पुलकित वापस आते थे। यह काव्य प्रेम उनके स्वभाव का नैसर्गिक गुण था जो सहज ही प्रकट हो जाता था। कवि गंग के छप्पय को सुनकर उन्होंने छत्तीस लाख रुपये प्रदान किये थे जिसकी चर्चा उसी समय से निरन्तर जनश्रुतियों में चली आ रही है। एक सुन्दर कवित्त का भी इतिहासकारों ने उल्लेख किया है। कहते हैं कि किसी कवि ने रहीम की उदारता और दानशीलता को ध्यान में रखकर एक कवित्त रचा जिसमें चकवा-चकवी की विरह की बात थी। सूर्यास्त हो जाने पर रात्रि का आगमन होता है और रात्रि के आने पर चक्रवाक दम्पति साथ नहीं रहते। उनका पूरी रात्रि के लिए वियोग हो जाता है। कवि ने इस कल्पना को अपनी शैली में व्यक्त किया है। सूर्य स्वर्ण के सुमेरु पर्वत की ओट में छिपता है। सूर्य छिपने पर चकवा-चकवी का वियोग हो जाता है। चकवी कहती है, "यदि किसी प्रकार खानखाना रहीम सुमेरु पर्वत पर अधिकार कर लें और उसका सोना याचकों को लुटा दें तो सूर्य को छिपने के लिए सुमेरु की ओट नहीं मिलेगी और हमारा रात्रि-वियोग नहीं होगा।"

कवि की यह कल्पना रहीम की दानशीलता पर प्रकाश डालने के साथ उसकी कथन-भंगिमा के चातुर्य को भी स्पष्ट करती है। ऐसी अनूठी कल्पना पर रहीम का रीझना स्वाभाविक था और कवि को प्रचुर मात्रा में धन-ऐश्वर्य की प्राप्ति तो सहज थी ही।

रहीम और तुलसी सम-सामयिक थे। इन दोनों के मेल-मिलाप की अनेक दन्त-कथाएँ प्रसिद्ध हैं। उनके सत्यासत्य का निर्णय करना तो कठिन है किन्तु दोनों के मिलन की बात अवश्य पुष्ट होती है। एक दंतकथा अति प्रसिद्ध है—कहते हैं कि एक निर्धन ब्राह्मण गोस्वामी तुलसीदास के पास अपनी कन्या के विवाह के लिए धन माँगने गया। तुलसी बाबा ने उसे रहीम के पास भेज दिया और उस याचक ब्राह्मण की लालसा को व्यक्त करने के लिए दोहे की एक पंक्ति को लेकर रहीम के पास पहुँचा और अपनी कामना रहीम के समक्ष व्यक्त की। गोस्वामी जी ने पंक्ति में लिखा था—'सुरतिय, नरतिय, नागतिय, यह चाहत सब कोय।' रहीम इस पंक्ति का आशय समझ गये और ब्राह्मण को कन्या के विवाह के लिए धन देकर उन्होंने तुलसीदास के दोहे की इस प्रकार पूर्ति करके ब्राह्मण को दे दी—'गर्भ लिए हुलसी फिरें, तुलसी सों सुत होय।' हुलसी तुलसी की माता का नाम था और श्लेष से हुलसी का अर्थ प्रसन्न मन से पुलकित होकर भी है। 'रहीम रत्नावली' शीर्षक पुस्तक में ऐसे कुछ और दोहे हैं जिनके आधार पर रहीम और तुलसी का पारस्परिक घनिष्ठ परिचय सिद्ध किया गया है।

काव्य-प्रेमी रहीम

रहीम का काव्य-प्रेम उनकी हिन्दी-रचनाओं से सर्वत्र विख्यात है। रहीम हिन्दी के अतिरिक्त तुर्की, फ़ारसी, अरबी और संस्कृत के भी ज्ञाता थे। उस समय के दरबारी कवियों में रहीम की गणना उनकी भाषाविषयक जानकारी के कारण सर्वोच्च स्थान पर की जाती है। बाबर के आत्मचरित का तुर्की भाषा से फ़ारसी मे अनुवाद कर रहीम ने सम्राट् अकबर को ही नहीं सभी दरबारियों को आश्चर्य-चकित कर दिया था। फ़ारसी तो उस समय राजभाषा थी और रहीम इस भाषा में दक्ष ही नहीं उच्च कोटि के विद्वान् और शायर थे। मौलाना शिबली ने उनकी प्रतिभा और कविता को देखकर लिखा है—"ख़ानख़ाना इस दरज़े का सुखनसाज था कि अगर शायरी में पड़ता तो उरफी और नसीरी का हमसर होता।"

इसमें कोई सन्देह नहीं कि अपने भाषाज्ञान और नैसर्गिक प्रतिभा के कारण रहीम ऐसे काव्य की सृष्टि कर सकते थे जिसका सानी मुश्किल से ही मिलता। रहीम को संस्कृत भाषा का भी ज्ञान था। उन्होंने कुछ श्लोक संस्कृत में लिखे हैं। यह प्रामाणिक रूप से नहीं कहा जा सकता कि जो श्लोक रहीम के नाम से प्रसिद्ध हैं वे रहीम-रचित ही हैं किन्तु जनश्रुति ने उन्हें अब रहीम रचित बना दिया है। डॉ. विमल चौधरी ने 'कंट्रीब्यूशन आफ मुस्लिम्स टु संस्कृत लर्निंग' पुस्तक में रहीम की संस्कृत रचनाओं का उल्लेख है। उनका बनाया ज्योतिष-मिश्रित ग्रंथ 'खेटकौतुक जातकम्' तो अति प्रसिद्ध है। इस ग्रंथ से उनके संस्कृत ज्ञान के साथ ज्योतिष-विद्या के ज्ञान पर भी प्रकाश पड़ता है। रहीम के संस्कृत ज्ञान को स्पष्ट करने के लिए केवल एक श्लोक यहाँ उद्धृत किया जाता है। श्लोक भक्तिभाव से पूर्ण है। किन्तु कथन भंगिमा का चारुत्व उसकी विशेषता है। श्लोक इस प्रकार है :

> रत्नाकरोऽस्ति सदनं गृहिणीच पद्मा किं देयमस्तिभवते जगदीश्वराय।
> राधागृहीत मनसे मनसेचतुभ्यं दत्तंमया निजमनस्तदिदंगृहाण॥

---अर्थात् हे विष्णु भगवान, आपका निवास स्थान तो रत्नों का आकर रत्नाकर है, आपकी पत्नी स्वयं लक्ष्मी है, मैं अकिंचन आपको क्या भेंट करूँ? हाँ, एक ही वस्तु आपके पास नहीं है, आपका मन। आपका मन तो राधा ने हरण कर लिया है अत: मैं अपना हृदय आपको समर्पित करता हूँ, कृपापूर्वक इसे स्वीकार कीजिए।"

एक भक्त की यह अभिलाषा भगवान् के ऐश्वर्य को प्रकट करने के साथ अपने समर्पण को भी सार्थक बनाता है। रहीम ने भक्तिविषयक दोहे आदि तो हिन्दी में प्रचुर मात्रा में लिखे हैं और उनमें वैष्णव भाव की गहरी छाप है। इस श्लोक में भी रत्नाकर में निवास, पत्नी रूप में लक्ष्मी और हृदय स्वामिनी राधा का संकेत वैष्णव भाव पर ही आधारित है।

रहीम की रचनाएँ

अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना के नाम से जो पुस्तकें बीसवीं शताब्दी में प्रकाश में आयी हैं उन सबको प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता। रहीम के नाम से समय-समय पर छोटी-बड़ी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई उनमें 'रहिमन शतक' की संख्या सबसे बड़ी है। वास्तव में ये पुस्तकें रहीम की रचनाओं में से स्वेच्छापूर्वक चयन कर सम्पादकों द्वारा तैयार की गयी हैं। इन्हें रहीम रचित कहना प्रमाणसम्मत नहीं है। पंडित मायाशंकर याज्ञिक द्वारा सम्पादित 'रहीम रत्नावली' को शोधकर्ताओं ने सर्वाधिक प्रामाणिक और श्रेष्ठ माना है। बाबू ब्रजरत्नदास द्वारा सम्पादित 'रहिमन विलास' भी अच्छी पुस्तक है। इन दोनों पुस्तकों में रहीम की रचनाओं का विश्लेषण-विवेचन करने के उपरान्त आठ पुस्तकों को रहीम प्रणीत माना गया है। उनके नाम इस प्रकार हैं—

1. दोहावली
2. नगरशोभा
3. बरवैनायिका भेद
4. बरवै
5. श्रृंगार सोरठा
6. मदनाष्टक
7. संस्कृत काव्य
8. फुटकर सोरठा

इन आठ पुस्तकों में से मदनाष्टक, संस्कृत काव्य और फ़ुटकर सोरठा की गणना वास्तव में पुस्तक रूप में नहीं होनी चाहिए। इन तीनों का आकार तथा रचनाकार यह बताता है कि रहीम के नाम से विख्यात हो जाने पर इन्हें सम्पादकों ने पृथक् पुस्तक मान लिया और रहीम को इनकी रचना का श्रेय भी दे दिया। इन आठ पुस्तकों के अतिरिक्त ज्योतिष का ग्रन्थ 'खेटकौतुक जातकम्' भी रहीम प्रणीत है। सम्भवतः सम्पादकों ने ग्रहों की क्रीड़ा पर लिखे इस ग्रन्थ को काव्य न मानकर रचनाओं में स्थान नहीं दिया। इस ग्रन्थ का विवेचन हम मुख्य ग्रन्थों की समीक्षा के बाद प्रस्तुत करेंगे।

रहीम दोहावली

रहीम रचित ग्रन्थों में लोकप्रियता की दृष्टि से दोहावली का प्रथम स्थान है। यह दोहावली लोक व्यवहार और नीति विषयक परामर्शों से युक्त होने के कारण सामान्य ज़न का कंठहार बन गयी है। इस दोहावली को कुछ लोगों ने सतसई समझकर 'रहीम सतसई' भी कहा है जो उचित नहीं है क्योंकि रहीम प्रणीत दोहों की कुल संख्या तीन सौ के लगभग है। इसमें सात सौ दोहे नहीं हैं।

हिन्दी के कवियों में रहीम एक ऐसे कवि हैं जिनका कार्य-क्षेत्र एवं जीवन-अनुभव अतिविस्तृत और व्यापक था। कोई दूसरा कवि इतने विशद क्षेत्र का दावा नहीं कर सकता। राजदरबार के शीर्ष पदों पर काम करनेवाला, किशोरावस्था से वृद्धावस्था तक युद्ध-क्षेत्र में जूझनेवाला, राजनीति के क्षेत्र में उत्कर्ष और अपकर्ष की ठोकरें खानेवाला, तथा व्यावहारिक जगत् में कड़वे-मीठे अनुभवों से सराबोर रहनेवाला शायद ही दूसरा कोई कवि हो। यह सौभाग्य तो एकमात्र खानखाना का है। और इसी को दोहावली में अभिव्यक्ति मिली है। रहीम बहुश्रुत और बहुपठित दोनों श्रेणियों में स्थान पाते हैं। अत: उनके दोहों में लोकज्ञान और शास्त्रज्ञान, नीति, प्रेम, ऐश्वर्य, दान, शील, संयम, मैत्री, भाग्य-नियति, समय-कुसमय, पुरुषार्थ, सत्सग, कुसंग, परोपकार, स्वार्थ, चिन्ता, असार-संसार, माया, जगत् की क्षणभंगुरता आदि प्रसंग वर्णित हैं। इन विषयों पर दोहे लिखते समय रहीम का ध्यान रामायण, महाभारत, पुराण आदि की कथाओं पर केन्द्रित रहा है। हिन्दू धर्म की पौराणिक कहानियों के आधार पर नीति और धर्म की बात करते समय रहीम का दृष्टिकोण शुद्ध भारतीय होता है। रहीम ने लोक व्यवहार में प्रचलित सूक्तियों को भी नीतिपरक दोहों में बाँध दिया है। इन दोहों के कुछ उदाहरण परिशिष्ट में संकलित हैं।

नगर शोभा

'नगर शोभा' रहीम रचित एक शृंगारिक ग्रन्थ है जिसमें 'अथ नगर शोभा नवाब खानखानांकृत' लिखा है। यह दोहा छन्द में लिखा गया है। मंगलाचरण से ग्रन्थ प्रारम्भ होता है। अत: यह स्वतन्त्र ग्रन्थ है, किसी अन्य ग्रन्थ से इसका सम्बन्ध नहीं है। इसमें कुल 142 दोहे संकलित हैं। इस ग्रन्थ की रचना की प्रेरणा तो कवि का शृंगार भाव ही है जो सामन्ती वातावरण में रहने के कारण तथा नाना जातियों की रमणियों को देखकर मन में उठे शृंगारपरक भावों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है। रंगरेजिन, बनजारिन, तुरकिन, तेलिन, गूजरी, कैथिन, जौहरिन, बरइन, भटियारिन आदि के सौन्दर्य-वर्णन के साथ शील-स्वभाव का संकेतात्मक परिचय देना इसका लक्ष्य है। जिन जातियों की नारियाँ इन दोहों में स्थान पा सकी हैं वे

सम्भवत: अकबर के मीनाबाज़ार में नर्तकी या किसी अन्य रूप में भाग लेती होंगी जिन्हें रहीम ने अपने काव्य का विषय बताया। 'नगर शोभा' नाम से स्पष्ट होता है कि कवि की दृष्टि नारी-सौन्दर्य पर विशेष रूप से रही होगी और नगर की शोभा के रूप में उनकी सुन्दरता का वर्णन इस ग्रन्थ में किया है! इस ग्रन्थ के कुछ उदाहरण परिशिष्ट में संकलित हैं। परवर्ती कवियों ने रहीम के इन दोहों के आधार पर बरवै लिखे हैं। भ्रमवश उन्हें भी रहीम रचित समझने की भूल हुई है। नगर शोभा में बरवै छन्द का प्रयोग नहीं है।

बरवै नायिका भेद

यह बरवै छन्द में नायिका भेद वर्णन का काव्य है। बरवै छन्द को रहीम ने क्यों स्वीकार किया यह स्पष्ट करते हुए प्रथम दोहा छन्द में उन्होंने कहा है—

कवित कह्यो, दोहा कह्यो, तुलै न छप्पय छन्द।
बिरच्यौ यहै बिचारकै, यह बरवै रसकन्द॥

नायिका भेद वर्णन में शास्त्रोक्त नायिकाओं की क्रमश: परिगणना करते हुए रहीम ने भी उत्तमा, मध्यमा, स्वकीया, मुग्धा, नवोढ़ा, परकीया आदि के भेद-प्रभेदों के अनुसार बरवै छन्द लिखे हैं। यह पूर्णतया शृंगारकाव्य है जिसमें रतिभाव को स्थायी भाव के रूप में सर्वत्र स्थान मिला है। अनुभाव और संचारी भाव के लिए इसमें स्थान न होने का कारण आलम्बन और उद्दीपन का वर्णन नहीं है। नायिकाओं के शील-स्वभाव में जो काम-भाव की झलक है वही स्थायीभाव रति को जागृत कर शृंगार रस तक ले जाती है। रहीम का एक बरवै तो जनश्रुतियों में स्थान पाकर ख्याति के शिखर का स्पर्श करता है। रहीम के एक सेवक को विवाह के कारण दरबार में उपस्थित होने में कुछ विलम्ब हो गया था। सेवक भयभीत था कि ख़ानख़ाना नाराज होंगे, दंड भी दे सकते हैं। ऐसी स्थिति में, कहा जाता है कि सेवक की नवोढ़ा पत्नी ने एक बरवै लिखकर रहीम को देने के लिए अपने पति को दिया। पति ने वह बरवै छन्द ख़ानख़ाना को सौंप दिया और विलम्ब का कारण नहीं बताया—

प्रेम प्रीति के बिरवा चलेहु लगाय।
सीचन की सुधि लीजो मुरझि न जाय॥

इस बरवै को पढ़कर रहीम का हृदय पसीज गया और आनन्द-विभोर होकर उन्होंने अपने सेवक को यथेच्छ अवकाश दे दिया। इस बरवै का रचयिता कौन है और यह किंवदन्ती कहाँ तक सच है, यह निर्णय करना आज दुष्कर है किन्तु इतना तो स्वीकार करना ही होगा कि यह मार्मिक-भाव प्रवण बरवै रहीम का प्रेरणा स्रोत

रहा है। इस छन्द की भाषा अच्छी है। हिन्दी के नायिका भेद-विषयक रीतिकालीन ग्रन्थों मे यह पुरानी है। इसमें भाषा का लालित्य, अभिव्यंजना का सौष्टव और कवित्व का चारुत्व है। अभी तक इस ग्रन्थ के 119 बरवै छन्द प्राप्त हुए हैं। बरवै की भाषा अवधीमिश्रित ब्रजभाषा है।

बरवै

रहीम का प्रिय छन्द बरवै था। अवधी भाषा में बरवै छन्द को दो कवियों ने गौरवपूर्ण पद प्रदान किया। पहले स्थान पर अब्दुर्रहीम खानखाना और दूसरे स्थान पर गोस्वामी तुलसीदास। ऐसी भी किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि रहीम की प्रेरणा से गोस्वामी जी ने बरवै रामायण का प्रणयन किया था। मंगलाचरण के बाद नन्दकुमार कृष्ण की स्तुति के छन्द हैं। इन छन्दों में कृष्ण-भक्ति का पूरा-पूरा वातावरण है। भक्तिपरक बरवै लिखने के साथ कवि ने शृंगार मिश्रित भक्ति का क्रम चलाया है। आकाश में घन घुमड़ते हैं, बिजली चमकती है, सावन की पूरी छटा चारों तरफ़ फैल गयी है। ऐसे सुहावने समय में प्राणप्यारे बलवीर का पास न होना पीड़ादायक है। यह शृंगारभाव, भक्ति के साथ जुड़कर भगवान् कृष्ण का बोध भी करा सकता है और प्राणप्यारे नायक की याद भी दिलाता है। यह बरवै मूलतः भक्तिपरक 101 छन्दों का ग्रन्थ है। चार बरवै अन्य संग्रहों में उपलब्ध हैं। इस प्रकार सभी छन्दों को रहीमरचित माना जाय तो 105 बरवै इस ग्रन्थ में हैं। अधिकांश बरवै भक्तिपरक शान्त रस में हैं, कुछ भक्ति-शृंगार का समवेत रूप हैं। इसे पढ़कर लगता है कि रहीम का मन जब युद्धों और संघर्षों के वात्याचक्र से निकलकर शान्तिमय वातावरण में सुस्थिर होकर शान्तभाव से बैठता होगा तब भक्ति और शान्त रस के बरवै छन्द उन्हें द्वन्द्वातीत शान्तिलोक में पहुँचा देते होंगे। जैसाकि पहले कहा गया है कि यह रीति-काव्य परम्परा का ग्रन्थ है अतः इसमें 'बारहमासा' भी संकलित है। उन्हीं ऋतुओं को कवि ने इसमें ग्रहण किया है जो भक्ति, शृंगार और शान्त रस के अनुकूल होती हैं। इस ग्रन्थ के कुछ बरवै परिशिष्ट में संकलित हैं।

शृंगार सोरठा

सोरठा नाम से रहीम के किसी ग्रन्थ का उल्लेख तो मिलता है किन्तु वास्तव में अभी तक वह ग्रन्थ सुलभ नहीं है। सोरठा छन्द की परिभाषा ही यह है कि दोहा उलटे सोरठा। दोहा लिखने में प्रवीण रहीम ने सोरठा छन्द भी लिखे होंगे यह अनुमान किया जा सकता है किन्तु सोरठा छन्द की पूर्ण प्रति कही नहीं है। जो छः सोरठे ग्रन्थावली में संकलित हैं उनकी भाषा से तथा सोरठों में गठित उपनाम रहिमन से हम उन्हें रहीम का कह सकते हैं। शृंगार भाव से सिक्त होने से इसे शृंगार सोरठा कहा है।

रहिमन पुतरी स्याम, मनहुँ जलज मधुकर लसै।
कैधों शालिग्राम, रूपे के अरधा घटै।।

मदनाष्टक

संस्कृत, (एवं खड़ीबोली) फ़ारसी, रेखता आदि भाषाओं में मिश्रण करके मालिनी छन्द में विरचित आठ छन्दों का ग्रन्थ 'मदनाष्टक' है। सप्तशती (सतसई) की भाँति अष्टक की संस्कृत में परम्परा रही है। रहीम ने उसी का पालन करते हुए यह 'मदनाष्टक' तैयार किया है। मदनाष्टक की भाषा के विषय में विद्वानों में कुछ विवाद रहा है। इसमें संस्कृत शब्दों का प्रयोग विभक्तिपूर्वक किया गया है। ऐसा प्रयोग वहीं व्यक्ति कर सकता है जो संस्कृत भाषा के व्याकरण से परिचित हो। रहीम के संस्कृत ज्ञान के तो कुछ प्रमाण मिलते हैं किन्तु जैसे विभक्तिपरक मदनशिरसि, विलसति, शरदनिशिनिशीथे आदि सामान्य प्रयोगों से व्याकरण ज्ञान का प्रश्न उठाना अनावश्यक है। इन छन्दों में खड़ी बोली या रेखता का ही प्रयोग बाहुल्य है, संस्कृत का नहीं।

'मदनाष्टक' का विषय शृंगार है किन्तु शृंगार में रूप-वर्णन ही मुख्य है। शरद ऋतु की रात्रि में बाँसुरी बजाते हुए कृष्ण को देखकर गोपियाँ काम से पीड़ित हो अपने पति-सुत परिवार को छोड़कर कृष्ण के पास दौड़कर आ गयीं। कृष्ण चंचल नेत्रों के साथ चाँदनी में, पीतपट कमर में कसे, अलबेला प्रेमी सदृश् अकेला खड़ा है। रूप-सौन्दर्य में वह अद्भुत है। उसकी ज़ुल्फ़ें काली और दिलकश हैं। चन्द्रमा की कला भी उसके आगे प्रकाशहीन लग रही है। कानों में चपल कुण्डल झूम रहे हैं, नयन बड़ी मस्ती से चारों ओर घूम रहे हैं। उस श्याम की आँखें बड़ी सुन्दर और तीर-सी नोकदार हैं। ऐसे श्याम को देखने को गोपी तरस रही हैं। कृष्ण के रूप-सौन्दर्य वर्णन में तो ये आठों छन्द अपना काव्य-वैभव दिखा रहे हैं किन्तु विप्रलंभ का भाव नहीं उभरता है। 'इतिवदति पठानी' के साथ उसकी इच्छा में विरह भाव झाँकता है जो विप्रलभ शृंगार का भान कराता है। 'मदनाष्टक' में भाषा-मिश्रण का चमत्कार ही अधिक है और भावोच्छ्वास का सौन्दर्य नहीं। भाषा चमत्कार में खड़ी बोली का प्रयोग ही आकर्षक और विस्मयजनक है। 'मदनाष्टक' के छन्दों में हिन्दी (खड़ी बोली) फ़ारसी और संस्कृत के शब्द प्रयोग में अनेक दोष हैं जो यह बताते हैं कि मनोविनोद के लिए ही किसी कवि ने ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जिसे शब्द-सौष्ठव की चिन्ता नहीं है। ऐसे अनगढ़ तोड़े-मरोड़े शब्द से न तो कवि का पांडित्य सामने आता है और न भाषा-सौष्ठव। 'रासपंचाध्यायी' का संदर्भ यदि कवि के सामने रहा भी हो तो भी वह उसका निर्वाह नहीं कर सका है। गोपियाँ जिस मनोदशा में शरद ऋतु की पूर्णिमा को

कृष्ण के वेणुवादन से आकृष्ट होकर घर-परिवार की चिन्ता त्यागकर वन में पहुँच गयी थीं वह मानसिकता इस पठानी की नहीं है। कामपीड़ा को वह 'क्या बला आन लागी' से प्रकट करती है जो गोपियों की रागमयी मानसिकता के मेल में क़तई नहीं है। 'मदनाष्टक' को मिश्र भाषा का मोहक चमत्कार ही कहा जा सकता है, उत्तम काव्य नहीं।

संस्कृत रचनाएँ

रहीम के नाम से कुछ संस्कृत के श्लोक प्रचलित हैं। पंडित मायाशंकर याज्ञिक ने इनकी प्रामाणिकता पर सन्देह व्यक्त किया है। 'रहीम ग्रन्थावली' में संकलित नौ श्लोक विभिन्न विषयों के हैं। दो-तीन श्लोक परमेश्वर से अपनी सांसारिक क्लेशों से मुक्ति की कामना से सम्बन्ध रखते हैं। इनका भाव शान्त रस का ही है। दो श्लोकों में मिश्र भाषा (संस्कृत और खड़ी बोली) द्वारा कौतूहल और विस्मय का चित्रण है। इन श्लोकों को पढ़ने पर मिश्र भाषा में छन्दों की सुगढ़ता और सौष्ठव आश्चर्यजनक लगता है। यदि ये श्लोक प्रामाणिक रूप से रहीम की रचना हैं तो मानना होगा कि रहीम संस्कृत के सामान्य ज्ञाता ही नहीं वरन् सुकवि भी थे। इन श्लोकों को पुस्तक के परिशिष्ट में उद्धृत किया गया है।

फुटकर पद, कवित्त (घनाक्षरी) सवैया, दोहा आदि

रहीम रचित कुछ कवित्त, सवैया, दोहा, पद आदि उपलब्ध है। ये किसी ग्रंथ में संकलित न होने से स्फुट रचनाओं में परिगणित किये जाते हैं। पंडित माया-शंकर याज्ञिक ने इन्हें प्रामाणिक माना है। भाषा की दृष्टि से इनका सौन्दर्य ब्रजभाषा का है जो उस समय की काव्य-भाषा थी। इन रचनाओं में रहीम के स्वभावानुकूल भाषा मिश्रण का रूप भी कवित्तों में लक्षित किया जा सकता है। भाषा के सम्बन्ध में रहीम का विचार लोक-भाषा को प्रश्रय देने का रहा है। पद-रचना सूर की शैली पर है और विषय भी कृष्ण का सौन्दर्य वर्णन है। भाषा में प्रवाह बनाये रखने के लिए रहीम ने अनुप्रास का प्रयोग किया है। काछनिकाछेक-लितकर, मोलनि, डोलनि, बोलनि, मीमनते मंदमंद मुसकानि, फहरि फहरि फहरानि, आदि पद-योजना में अनुप्रास का ही सौन्दर्य है। इन फुटकर रचनाओं के पाठान्तर भी उपलब्ध हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि श्रुति मधुर होने के कारण ये रचनाएँ लोकप्रिय रही होंगी और गायक या लिपिक ने रुचि भेद से इनमें शब्द परिवर्तन कर लिया हो। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन कवित्त-सवैयों की शब्द-ध्वनि और वाक्य-विन्यास प्रौढ़ कवि की रचना का संकेत देनेवाले हैं। शृंगार, नीति, अनुभूति, आदि को देखकर इनका रहीम रचित होना असंदिग्ध है।

खेटकौतुक जातकम्

यह एक ज्योतिष ग्रंथ है जिसकी रचना संस्कृत श्लोकों में फ़ारसी के मिश्रण से की गयी है। 'पारसीय पदैर्युक्तम्' कहकर रहीम ने स्वयं इस तथ्य को स्वीकार किया है। इस ग्रंथ में सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि आदि नक्षत्रों के भावफल द्योतन के लिए बारह-बारह श्लोक दिये गये हैं। राहु और केतु का भी भावफल है। यह ज्योतिष ग्रंथ कवि की कल्पना का परिणाम न होकर ज्योतिष ज्ञान का फल है। इसमें वर्णित नक्षत्रों के फल ज्योतिष ग्रंथों के आधार पर हैं। इसका प्रकाशन हो चुका है। इस ग्रंथ से भी रहीम के संस्कृत ज्ञान का प्रमाण मिलता है। रहीम संस्कृत और फ़ारसी का मिश्र प्रयोग करके सम्भवतः दोनों भाषाओं को समीप लाने की इच्छा से यह विचित्र प्रयास करते रहे हों।

रहीम का फ़ारसी दीवान

रहीम फ़ारसी भाषा के विद्वान् थे। यह तो उनके बाबर आत्मचरित को तुर्की भाषा से फ़ारसी में अनुवाद से सिद्ध होता है। इस अनुवाद ने रहीम की धाक फ़ारसी भाषा के शायरों और अदब की दुनिया में जमा दी थी। 'वाकेआत बाबरी' नाम से रहीम का अनुवाद उस समय भी लोकप्रिय हुआ और वर्तमान युग के इतिहास लेखकों ने इसे बहुत उपयोगी माना है। फ़ारसी दीवान में रहीम की काव्य रचनाएँ संकलित हैं जो उनके फ़ारसी ज्ञान को उद्घाटित करती हैं।

कुछ विद्वानों ने रहीम द्वारा रचित 'रासपंचाध्यायी' का भी उल्लेख किया है किन्तु इस नाम की रहीम प्रणीत कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं है। ऐसा भी कहा जाता है कि रहीम ने शतरंज खेल के विषय में कोई पुस्तक लिखी थी जो अप्राप्य है। रहीम शतरंज के खिलाड़ी अवश्य थे और शतरंज की चालों को उन्होंने अपने ग्रंथ दोहावली में स्थान दिया है।

संक्षेप में, रहीम के ग्रंथों के परिचय से यह स्पष्ट होता है कि रहीम कई भाषाओं के ज्ञाता ही नहीं अपितु कई भाषाओं में काव्य-रचना करने की क्षमता रखते थे। हिन्दी और संस्कृत के पिंगल शास्त्र का उन्हें ज्ञान था और नाना छन्दों के प्रयोग से उन्होंने अपनी कविता को समृद्ध किया है। रहीम के काव्य के विषय बहुत विस्तृत और व्यापक हैं। इतना बहुआयामी कृतित्व और जीवनानुभवों से समृद्ध व्यक्तित्व उस समय किसी दूसरे कवि का नहीं था। भक्ति काल की मूल चेतना और परवर्ती रीतिकालीन शृंगार-भावना उनके पास थी। शृंगार रस का उपयोग उन्होंने यथार्थ जीवन से जोड़कर किया है। उनके प्रमुख ग्रंथों में नीति और व्यवहार का प्रबोधात्मक रूप द्रष्टव्य है। ऐसा स्वानुभूत नीति व्यवहार का काव्य भी किसी अन्य कवि ने इतनी प्रचुर मात्रा में नहीं लिखा। जीवन की व्यस्त-

ताओं के बीच काव्य-सर्जन के लिए उन्मुक्त एवं आह्लादपूर्ण क्षण निकल लेना आभ्यन्तर रचनाधर्मिता का ही पुण्य फल है।

रचनाधर्मिता की आधार-भूमि

रहीम के अपने बहत्तर वर्ष के जीवन में काव्य-रचना के लिए अत्यल्प समय मिला। सोलह वर्ष की किशोरावस्था से पैंसठ वर्ष की प्रौढ़ावस्था तक उन्हें अनेक युद्धों में सक्रिय रूप में भाग लेना पड़ा। सेनापति, सिपहसालार या सेनानायक के रूप में युद्ध भूमि में उतरने से पहले उन्हें तैयारी करनी पड़ती थी। तैयारी का समय भी युद्ध का ही समय होता है। शस्त्र-अस्त्र सुसज्जित करने के साथ सैनिकों का चयन और प्रशिक्षण भी सेनापति का दायित्व होता है। गुजरात, दक्षिणी राज्यों, राजस्थान और उत्तर भारत में लाहौर तक फैले व्यापक क्षेत्र में जो व्यक्ति युद्धों में जूझता रहा हो उसे काव्य सर्जन के लिए कितना समय मिलता होगा इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। समय के साथ कवि का मनोजगत् भी भाव-विचार, कल्पना से परिपूर्ण होना चाहिए तथा चित्त की स्थिर शान्ति के मानसिक वातावरण की अनुकूलता भी अपेक्षित है। क्या रहीम को यह भावभूमि और अनुकूल परिवेश कभी सुलभ हुए होंगे? निश्चय ही रहीम अपने विश्राम के क्षणों में काव्य-सर्जन में प्रवृत्त होते होंगे और उन दुर्लभ क्षणों का लोक संग्रह और लोक-रंजन के लिए उपयोग करते होंगे। प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति के लिए द्वन्द्व और संघर्ष का, बाहरी अशान्ति का वातावरण रचनाधर्मिता को समाप्त नहीं कर सकता और न उस पर कोई प्रतिबन्ध ही लगा सकता है। रहीम बाहर से जूझते रहे और भीतर के प्यार और मनुहार से पसीजते रहे। यह भीतर का पसीजना ही सर्जन की मूल प्रेरणा है।

रहीम जन्मजात प्रतिभा-सम्पन्न साहित्य-सर्जक कलाकार थे। उनकी रचनाधर्मिता की आधारभूमि उनकी आभ्यन्तर प्रेरणा थी। इस प्रेरणा के साथ जीवन में बहुआयामी व्यापक क्षेत्र में काम करने के कारण उनके पास अनुभवों का भंडार था। ये अनुभव यथार्थ की भूमि से उपजे और यथार्थ के जल से सिंचित हुए थे अतः उनका यथार्थ बोध उन्हें अभिव्यक्ति देने के लिए प्रेरित करता था। उनकी भक्ति, नीति, शृंगार और शान्त रस की रचनाओं में उनका अपना भोगा और सहा हुआ यथार्थ ही बोलता है।

रहीम के काव्य की दूसरी आधार भूमि लोक-संग्रह पर दृष्टि जमाये है। लोक-संग्रह का तात्पर्य लोक-मंगल से ही है जो व्यक्ति विशेष के लिए न होकर सामान्य-जन के लिए कल्याणकारी हो वही भाव और विचार उपादेय है। रहीम ने अपनी दोहावली में इस लोक-मंगल को केन्द्र में रखकर नीति, भक्ति और सदाचार की

मर्यादा के सम्पुष्ट करनेवाले दोहे लिखे हैं। व्यावहारिक स्तर पर इन दोहों में जीवन, जागृति और कल्याण-पथ का संकेत है।

रहीम के काव्य की तीसरी आधार-भूमि हिन्दू धर्म के रामायण, महाभारत, पुराण तथा नीतिपरक ग्रंथ हैं जिनसे मिथकीय कथानक और आचरण के उपदेश ग्रहण किये गये हैं। इन ग्रंथों से सामग्री ग्रहण करने का कारण कुछ विद्वानों ने अकबर की उदार नीति तथा 'दीनइलाही' के प्रचार को ठहराया है, जो सर्वथा अनुचित है। रहीम स्वयं साम्प्रदायिक संकीर्णता से दूर रहनेवाले, उदारचेता, मानवतावादी व्यक्ति थे। उनके लिए हिन्दू धर्म मानवता की दृष्टि से उतना ही प्रिय था जितना इस्लाम। अतः इस्लाम धर्म के गूढ़-से-गूढ़ रहस्य के वेत्ता होने के साथ वे हिन्दू धर्म के भी पूरे जानकार थे। हिन्दू देवी-देवताओं के स्वरूप-बोध के साथ उनके प्रभाव और पूजा-पद्धति से परिचित थे। इसी कारण रामायण और महाभारत के साथ पौराणिक मिथकीय सन्दर्भों का उन्होंने घटना सहित अपने काव्य में उपयोग किया है। यह उनकी वैयक्तिक जीवन-दृष्टि है, किसी का अंधानुकरण नहीं।

रहीम काव्य की चौथी आधार भूमि उनका बहुभाषा ज्ञान था। तुर्की, अरबी, फ़ारसी 'संस्कृत' हिन्दी तथा योरोपीय विदेशी भाषाओं के ज्ञान ने उन्हें विस्तृत फलक पर काव्य लिखने की प्रेरणा दी। फ़ारसी तो उनकी प्रिय भाषा थी किन्तु अपनी परिपक्व रचना-धर्मिता को हिन्दी भाषा की ब्रज और अवधी से जोड़कर दोहावली, नगरशोभा और बरवै जैसी प्रौढ़ रचनाएँ तैयार कीं। बहु भाषाविद् होने के कारण उन्हें अनेक दिशाओं से ज्ञान की किरणें प्रकाश देने को तत्पर रहती थीं। भाषा के विलक्षण प्रयोग कर वे अपने कथ्य की सीमा का विस्तार कर लेते थे।

रहीम काव्य की पाँचवीं आधारभूमि उनकी अपनी मानवीय संवेदना और मानवता के प्रति सहज प्रेम की भावना है। ऐसा संवेदन जो मनुष्य को कातर बनाकर ही न छोड़ दे वरन् उसे मानवता के साथ जोड़कर अनुभूतिप्रवण बना सकने में सहायक हो। यह क्षमता रहीम के पास थी और इसीलिए उन्होंने मानवीय करुणा को सहज संवेद्य बनाकर अपने काव्य में विविध रूपों में स्थान दिया है।

उपर्युक्त आधारभूमियों को ध्यान में रखते हुए यदि रहीम की रचनाधर्मिता पर दृष्टि-निक्षेप किया जाय तो उनके काव्य में अनुस्यूत उन सारे तत्त्वों का भली-भाँति उद्घाटन हो सकता है जिन पर रहीम का काव्य खड़ा है। संक्षेप में, हम उन विशिष्ट तत्त्वों का यहाँ उल्लेख करेंगे। इस प्रकार के अध्ययन के लिए दोहावली के मुख्य विषयों पर विचार करना आवश्यक है।

प्रेम

मनुष्य के जीवन में विविध प्रकार के भाव और विचार, समय-समय पर उत्पन्न होते रहते हैं। इन भावों में सबसे मुख्य भाव प्रेम है जो रतिभाव से संयुक्त होकर मनुष्य की सम्पूर्ण चेतना पर छा जाता है। श्रृंगार रस का स्थायी भाव रति है किन्तु प्रेम का क्षितिज विस्तृत है जो श्रृंगार की सीमाओं में नहीं समाता। भगवत्-प्रेम, राष्ट्र-प्रेम, प्रकृति-प्रेम, शिशु-प्रेम एवं धर्म-प्रेम आदि प्रेम के नाना रूप हैं। रहीम ने श्रृंगारपरक प्रेम के साथ विविध रूपों पर भी ध्यान दिया है। श्रृंगार रस में संयोग और वियोग दो स्थितियाँ रहती हैं। जब प्रिय पास होता है तब संयोग और जब दूर रहता है तब वियोग। यह विरह-वियोग का दुःख भी प्रेम की पीर से ही पैदा होता है।

कहा करौं वैकुंठ ले, कल्पवृक्ष की छाँह।
रहिमन ढाक सुहावनो, जो गल प्रीतम बाँह।।

प्रेम मार्ग को कवियों ने तलवार की धार पर चलने के सदृश कठिन कहा है। रहीम ने भी प्रेम-पंथ को बहुत कठिन और पेचीदा माना है। इस मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति निरन्तर प्रेम की आग में सुलगता रहता है—

जो सुलगे ते बुझ गये, बुझे ते सुलगे नाँहि।
रहिमन दाहे प्रेम के, बुझ-बुझ के सुलगाँहि।।

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोरहु चटकाय।
टूटे से फिर ना मिले, मिले गाँठ परि जाय।।

रहिमन मैंन तुरंग चढ़ि, चलिवौ पावक माँहि।
प्रेमपंथ ऐसो कठिन, सब कोउ निबहत नाहि।।

रहीम अनन्य भाव से स्वकीया प्रेम के समर्थक हैं, परकीया प्रेम को वह सात्विक भाव का प्रेम नहीं मानते। यदि प्रिय की छवि नेत्रों में बस रही है तो दूसरे किसी की छवि नेत्रों में कैसे स्थान पा सकती है! यह अनन्य प्रेम की स्थिति है जिसे सोदाहरण रहीम ने व्यक्त किया है—

प्रीतम छवि नैनन बसी, पर छवि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि, आप पथिक फिर जाय।।

ऐश्वर्य-सम्पत्ति

भौतिक ऐश्वर्य अर्थात् धन-सम्पत्ति के विषय में रहीम की विचारधारा संतुलित है। ऐश्वर्य की शक्ति का उन्होंने गुणगान किया है और स्वीकार किया

है कि सम्पत्तिहीन निर्धन व्यक्ति का संसार में कहीं सम्मान नहीं होता। सांसारिक विपदा के समय सबसे बड़ा सहारा धन ही है। सम्पत्तिहीन जीवन वैसा ही निष्प्रभ होता है जैसे दिन में दिखायी देनेवाला निस्तेज चन्द्रमा।

रहिमन निज सम्पत्ति बिना, कोउ न विपति सहाय।
विनु पानी ज्यों बलज को, नहिं रवि सकै बचाय।।

सम्पति भरम गँवाइ के, हाथ रहत कछु नाँहि।
ज्यों रहीम ससि रहत है, दिवस अकासहि माँहि।।

सामाजिक मान-सम्मान के मार्ग से सबसे बड़ा रोड़ा निर्धनता है। यदि धन नहीं तो समाज में रहने की अपेक्षा वन में जीवन बिताना अच्छा है। 'न बन्धु मध्ये धनहीन जीवनम्' को ध्यान में रखकर रहीम ने कहा है—

वरु रहीम कानन भलो, वास करिय फल भोग।
बन्धु मध्य धन हीन ह्वै, वसिबो उचित न योग।।

धन की सार्थकता उन्होंने याचक के लिए, सत्कार्य के लिए दान देने में मानी है। उस व्यक्ति की सम्पत्ति व्यर्थ है जो याचक को दान नहीं देता। याचक बनना कुछ अच्छी बात नहीं है। यथाशक्ति धनोपार्जन करके याचकता से बचना चाहिए। याचक बनते ही माँगनेवाले का स्थान नीचा हो जाता है—

रहिमन याचकता गहै, बड़े छोट ह्वै जात।
नारायण हू को भयो, बावन आँगुर गात।।

संगति

रहीम ने सत्संगति और कुसंगति के विषय में भी अपने विचार बड़े स्पष्ट शब्दों में प्रकट किये हैं। सत्संगति की महिमा सभी ग्रंथों में मिलती है। सत्संग से मनुष्य अपने भविष्य का निर्माण कर सकता है और कुसंग से जीवन नष्ट भी कर लेता है। यदि मनुष्य का अपना स्वभाव शील-आचरण ठीक है, तो कुसंग भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लिपटे रहत भुजंग।।

नीच की कुसंगति का दुष्प्रभाव भी रहीम से छिपा नहीं था। उन्होंने नीच संसर्ग बड़ा घातक माना है और उससे बचने का उपदेश किया है। कवि समय के अनुसार यह मान्यता है कि स्वाति नक्षत्र की बूंद केले में, कपूर और शुक्ति में पड़कर मोती बन जाती है वही बूंद सर्प के मुख में पहुँचकर विष में बदल जाती है।

मुकता कर कर पूर कर, चातक जीवन जोय।
येतो बड़ो रहीम जल, व्याल वदन विष होय ।।

रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलक न काहि।
दूध कलारी कर गहे, मद समुझैं सब ताहि ।।

सदाचरण और शील को रहीम ने अपनी रचनाओं में स्थान देकर आचरण की पवित्रता पर बल दिया है। उनकी मान्यता थी कि जहाँ रहकर शील की रक्षा हो सके वहीं रहना उचित है।

रहिमन रहिबो वाँ भलो, जौं लौं सील समूच।
सील ढील जब देखिए, तुरत कीजिए कूच ।।

यदि मनुष्य अपने मन को वश में रखकर व्यवहार करे तो शील की रक्षा हो सकती है। मन ही इन्द्रिय निग्रह में सबसे अधिक सहायक होता है। यदि मन वश में रहे तो इन्द्रियाँ भी वश में रहती हैं। इसी भाव को स्पष्ट करने के लिए दृष्टान्तपूर्वक रहीम यह दोहा लिखते हैं—

जो रहीम मन हाथ है, तो तन कितहि न जाहि।
जल में ज्यों छाया परे, काया भीजत नाहि ।।

भाग्य और पुरुषार्थ

पुरुषार्थ और भाग्य के बीच सदैव संघर्ष रहा है। जो नियतिवादी हैं वे यही मानते हैं कि 'भाग्यं फलति सर्वत्र, न विद्या न च पौरुषम्।' भाग्य ही सदा प्रबल होता है। विद्या और पुरुषार्थ काम नहीं आते। रहीम ने अपने जीवन में ही भाग्य के खेल देखे थे। ललाट लिपि में क्या अंकित है यह कोई नहीं जानता। रहीम को भाग्य पर अटूट विश्वास हो गया था। उन्होंने भाग्य के विषय में दो दर्जन से अधिक दोहे लिखे हैं। वे मनुष्य को भाग्य के हाथ की कठपुतली मानते थे—

ज्यों नाचत कठपूतरी, करम नचावत गात।
अपने हाथ रहीम ज्यों, नहीं आपुने हाथ ।।

मनुष्य के हाथ में तो कर्म करना ही है, फल उसके भाग्य के हाथ में हैं। 'पाँसे अपने हाथ में दाव न अपने हाथ।' पाँसा फेंककर चौपड़ खेलनेवाला दाँव के लिए अपने भाग्य के भरोसे बैठ जाता है। यदि भाग्य लिपि में रामचन्द्र को अयोध्या का राजा बनना लिखा होता तो उन्हें राज्य मिलता, किन्तु जो लिखा था वह बनवास था जिसका न तो राम को पता था और न अयोध्यावासी ही इस बात को जानते थे। वन में भी राम को नियति के हाथ कष्ट उठाने पड़े। भाग्य की रेखा ही तो उन्हें हिरण के पीछे दौड़ानेवाली थी।

राम न जाते हिरन संग, सीय न रावन साथ।
जो रहीम भावी कतुहुँ, होत आपुने हाथ ।।

भाग्य के इस प्रबल सामर्थ्य से परिचित होने पर भी रहीम ने पुरुषार्थ से कभी मुख नहीं मोड़ा। परम पुरुषार्थी व्यक्ति के रूप में जीवन व्यतीत किया और उन समस्त विपदाओं को सहा जो उनके भाग्य में लिखी थीं। पुरुषार्थ और भाग्य की इस प्रतिद्वंद्विता में रहीम पुरुषार्थ छोड़ने या उससे विरत होने की बात नहीं कहते। दो वृक्षों को अन्योक्ति के रूप में प्रस्तुत कर उन्होंने इस तथ्य को स्पष्ट किया है कि पुरुषार्थ करनेवाला कष्ट सहता है किन्तु कष्ट और पीड़ा के बीच वह यदि निराश नहीं होता तो वह श्रेष्ठ है। दो वृक्ष दृष्टान्त रूप में गृहीत हैं, केला और करील। केला घर के उद्यान में खाद और जल से पालित-पोषित होकर पनपता है। करील का पालन-पोषण प्राकृतिक उपादानों से होता है। वह वर्षा, आतप, हिम सहकर (पुरुषार्थ) द्वारा वन में अपना पल्लवन करता है। रहीम की दृष्टि में वह श्रेष्ठ है—

जो घर ही में घुस रहे, कदरी सुपत, सुडील।
तो रहीम तिनते भले, पथ के अपत करील ।।

मनुष्य जीवन बड़ा विचित्र है। जो व्यक्ति आज सम्पत्तिशाली है वही कल नियति के विधान से घोर संकट में फँसकर विपन्न भी हो सकता है। उस समय मनुष्य का पुरुषार्थ काम नहीं आता। भीम जैसे राजकुमार को भी विराट के यहाँ रसोइये का काम करना पड़ा था। यह दैवदुर्विपाक चक्र ही था—

जो पुरुषारथ ते कहूँ, सम्पति मिलत रहीम।
पेट लागि वैराट घर, तपत रसोई भीम ।।

रहीम ने व्यक्ति को चरित्र के आधार पर छोटा या बड़ा माना है। महापुरुष कभी अपनी बड़ाई नहीं करता। यदि कोई महापुरुष को छोटा कहता भी है तो भी उसके बड़प्पन में कोई अन्तर नहीं आता। महापुरुष कभी आत्मश्लाघा के वचन नहीं बोलते—

जो बड़ेन को लघु कहें, नहि रहीम घटि जाहिं।
गिरधर मुरलीधर कहें, कछु दुख मानत नाहिं ।।

बड़े बड़ाई ना करें, बड़ो न बोले बोल।
रहिमन हीरा कब कहे, लाख टका मेरो मोल ।।

रहीम को अपने जीवन में महापुरुषों के साथ रहने का अवसर मिला था किन्तु समय-समय पर ईर्ष्यालु और नीच प्रकृति के लोग भी मिलते रहे थे। नीच

व्यक्तियों के संपर्क में आने से उन्हें जो अनुभव हुआ वह बहुत ही क्लेशप्रद था। रहीम ने सैन्य-संचालन के समय षड्यंत्रकारी धूर्त पुरुषों के नीच स्वभाव का भली-भाँति अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला था कि धूर्तों के साथ कितना ही सद्व्यवहार किया जाय किन्तु वे अपना स्वभाव नहीं छोड़ते। साँप को दूध पिलाने से वह अपना दंश-स्वभाव छोड़कर पालतू नहीं बनता—

रहिमन लाख भली करो, अगुनी अगुन न जाय।
राग सुनत पयपियतहूँ, साँप सहज धरि खाय॥

रहिमन ओछे नरन सों, बैर भली न प्रीत।
काटे चाटे श्वान के, दुहूँ भाँति विपरीत॥

कुसंग का ज्वर भयंकर होता है। इस ज्वर से ग्रसित होने पर मनुष्य के जीवन में हानि के सिवाय कुछ प्राप्त नहीं होता।

सत्संग का भी प्रभाव पड़ता है, नीच व्यक्ति भी उसके शील-स्वभाव से कुछ-न-कुछ ग्रहण कर ही लेता है। यदि मनुष्य का स्वभाव उत्तम है तो वह दुष्प्रभाव से बच सकता है।

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग॥

रहीम ने स्वार्थ-परायणता, आत्म-प्रशंसा, आडम्बर-प्रियता, चिन्ता, क्षणभंगुरता, माया, ममता, विषय, सुख, मन आदि विषयों पर स्वानुभूतिपरक दृष्टि से अनेक नीतिपरक दोहे लिखे हैं। यदि रहीम की दोहावली का अनुशीलन किया जाय तो व्यावहारिक ज्ञान के साथ लोकनीति और समाजनीति की अनेक बातों का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। रहीम ने नीतिपरक दोहों में दृष्टान्त और उदाहरणों का प्रयोग किया है। उदाहरणों में पुराण, इतिहास और हिन्दू धर्म के आख्यानों को स्थान दिया है। रामायण और महाभारत उनके प्रिय ग्रंथ हैं।

रहीम की दोहावली के अध्ययन से यह भी स्पष्ट प्रतीत होता है कि रहीम ने संस्कृत के नीतिशतक, चाणक्यनीति, विदुरनीति, शृंगारप्रकाश आदि ग्रंथों का भली-भाँति पारायण किया था। अनेक दोहों में रहीम ने इन पुस्तकों के श्लोकों का अनुवाद ही प्रस्तुत किया है। 'रसगंगाधर' जैसे ग्रंथ में रहीम के दोहों की छाया पाकर कुछ विद्वानों ने पंडितराज जगन्नाथ को भी रहीम का ऋणी माना है। पंडितराज जगन्नाथ का जीवन विलक्षण घटनाओं से भरा था। इस विलक्षणता में रहीम की सूक्तियों का प्रभाव देखा जा सकता है। रहीम ने अपने दोहों में शिष्ट हास्य को भी स्थान दिया है। इन हास्यपरक उक्तियों में भी संस्कृत के ग्रंथों से उदाहरण ग्रहण किये गये हैं। लक्ष्मी की चंचलता का वर्णन संस्कृत ग्रंथों में भरा

पड़ा है। लक्ष्मी के अस्थिर स्वभाव तथा वृद्ध व्यक्ति के साथ न रहने की बात को रहीम ने हास्य-व्यंग्य प्रभावी शैली में प्रस्तुत किया है :

कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय ।
पुरुष पुरातन की वधू, क्यों न चंचला होय ।।

यदि रहीम के समस्त काव्य को ध्यान से रखकर उसका रस की दृष्टि से अनुशीलन किया जाय तो रहीम मूलतः श्रृंगार तथा भक्ति रस के कवि प्रतीत होते हैं। किन्तु बरवै की रचना तो श्रृंगार के लिए ही की गयी है। भक्ति के बरवै लिखकर शान्त भाव की प्रमुखता दी है। दोहावली में नीतिपरक दोहों का आधिक्य है किन्तु रसनिष्पत्ति की दृष्टि से श्रृंगार, हास्य, शान्त और भक्ति का आधिक्य लक्षित होता है।

रहीम ने जिन विषयों का प्रमुख रूप से चयन किया उनमें राजनीति, लोकनीति, अध्यातम, भक्ति, प्रकृति और जीवनानुभव हैं। अपने जीवन के कटु-तिक्त, मधुर और स्मरणीय अनुभवों को रहीम ने बड़ी काव्य-प्रतिभा से प्रस्तुत किया है। व्यक्तिगत अनुभवों को साधारणीकृत रूप में प्रस्तुत करना भी एक कला है। इस कला में रहीम को पूर्ण दक्षता प्राप्त थी। उनकी दोहावली वास्तव में सांसारिक अनुभवों और लोकव्यवहार की मर्यादाओं की उद्‌बोधक एवं पथप्रदर्शक रचना है।

रहीम-काव्य का अनुशीलन करने पर हमें उनकी काव्य-साधना के स्पष्टतः दो आदर्श लक्षित होते हैं। एक का आधार **सामाजिक चेतना** को प्रबुद्ध करनेवाला लोक-जीवन-व्यवहार का पक्ष है जिसमें नीति, धर्म और लोक-व्यवहार का पुट है। लोकानुभूति की व्यापकता ने उनके इस प्रथम कोटि के काव्य को जीवन दर्शन का रूप दे दिया है। दूसरी कोटि की काव्य-रचना जीवन के **रागात्मक पक्ष** को स्पर्श करती है। भारतीय रागात्मक प्रेम सम्बन्धों की सच्ची झलक प्रस्तुत करनेवाला यह काव्य रहीम के कोमल एवं द्रवीभूत होनेवाले रसिक हृदय की झाँकी कहा जा सकता है। लोकमंगल की साधनावस्था और सिद्धावस्था दोनों को हृदयंगम कर रहीम ने काव्य-रचना की है। अतः जीवन की समग्रता उनके काव्य में प्रतिबिम्बित होती हुई स्पष्ट परिलक्षित होती है। उपदेश और सीख को जितने सरस, प्रभावपूर्ण और आकर्षक शैली से रहीम प्रस्तुत कर सके हैं, कबीर के सिवाए कोई दूसरा कवि नहीं रख सका। रहीम हिन्दी-नीति काव्य के सम्राट् हैं।

रहीम ने संस्कृत के जिन कवियों से भावों को ग्रहण किया है उसमें भी अपनी मौलिकता की छाप छोड़ी है। संस्कृत कवियों के शब्दाडंबर को बचाकर मूल भाव को ही अपनी रोचक शैली में ढाला है। दो-तीन उदाहरणों से यह भाव स्पष्ट हो जाता है :

संस्कृत कवि का श्लोक है—

दुर्जनेन समं सख्यं प्रीतिं चापि न कारयेत्।
उष्णो दहति चांङ्गारः शीतः कृष्णायतेकरम्।।

रहीम का अनुवाद है—

ओछे को सतसंग, रहिमन तजहु अंगार ज्यों।
तातो वारे अंग, सीरे पै कारो करै।।

कुसंगति का दुष्परिणाम दिखाने के लिए संस्कृत का प्रसिद्ध श्लोक है—

सच्छिद्र निकटे वासो न कर्तव्यः कदाचन।
घटी पिवति पानीयं ताड्यते झल्लरी यथ।।

रहीम ने इसका भावानुवाद सरल भाषा में इस प्रकार किया है—

रहिमन नीच प्रसंगते, नित प्रति लाभ विकार।
नीर चुरावै सम्पुटी, मारु सहत परिवार।।

संस्कृत ग्रन्थों से रहीम ने शताधिक भावों को ग्रहण कर अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। साथ ही, अपने पूर्ववर्ती कबीर जैसे भक्त कवि से भी रहीम ने उत्तम भाव ग्रहण किये हैं। यह भावापहरण काव्य तस्करी न होकर गुणग्राहकता है जिसे परवर्ती कवियों ने भी स्वीकार किया है। रहीम ने पूर्ववर्ती कवि कबीर, समकालीन कवि तुलसीदास, सूरदास आदि के समान ही भावाभिव्यक्ति की है। रहीम परवर्ती बिहारी, मतिराम, रसखान, व्यास, हरिराम, गिरधर कवि राय, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि ने रहीम की रचनाओं के आधार पर अनेक भावों का वर्णन किया है। उनके दोहों पर कुंडलियाँ और छप्पय लिखकर दोहों का विस्तार किया है। यह रहीम के काव्य की स्वीकृति ही है।

रहीम ने मनुष्य के कर्तव्य-कर्म में परोपकार को एक मानवीय करणीय धर्म के रूप में स्वीकार किया है। केवल अपना पेट भरना और अपने लिए सुख-सुविधा जुटाकर मनुष्य जीवन पूरा नहीं होता। परोपकार को वे ऐसा कर्म मानते हैं जो स्वयं कष्ट सहकर भी दूसरों को सुख देनेवाला हो। अपने स्वार्थ को छोड़कर दूसरों के लिए अपनी हानि उठाने में भी वे सुख मानते हैं। इस संदर्भ में उन्होंने भारतीय मिथक को प्रश्रय देते हुए राजा शिवि और ऋषि दधीचि का उदाहरण दिया है—

रहिमन पर उपकार के, करत न पाटी बीच।
मांस दियो शिवि भूप ने, दीन्हों हाड़ दधीच।।

एक लौकिक उदाहरण देकर परोपकार को समझाने की उनकी शैली द्रष्टव्य है—

कुएँ से जल निकालने में घड़ा काम आता है। घड़े के गले में रस्सी का फंदा लगाया जाता है। कुएँ से टकराने का खतरा भी रहता है। अपने अस्तित्व की चिन्ता न करके घड़ा कुएँ से शीतल जल लाकर प्यासे लोगों की प्यास बुझाता है। घड़े का यह परोपकारी रूप स्वसुख त्याग और परहित भावना का श्रेष्ठ उदाहरण है :

रहिमन प्रीति सराहिए, जो घट गुन सम होय।
भीति आप पे डारि कैं, सबै पियावै तोय॥

रहीम के मत में निजी स्वार्थ-साधन में लगे रहना मानव-धर्म का पालन न करना है। स्वार्थी व्यक्ति सामाजिक न्याय का पालन भी नहीं करता। समाज का सारा व्यापार-व्यवहार अन्योन्याश्रित है। बबूल वृक्ष को रहीम ने स्वार्थी ठहराते हुए लिखा है कि बबूल न तो फूल-फल देता है और न छाया। जो कोई बबूल की छाया में बैठता है उसे काँटों की चुभन झेलनी पड़ती है। अतः इस स्वार्थी पेड़ से सब दूर ही रहना चाहते हैं—

आप न काहू काम के, डार पात फल मूल।
औरन को रोकत फिरैं, रहिमन कूर बबूल॥

संक्षेप में, रहीम के नीति-काव्य के अनुशीलन से दो तथ्य स्पष्ट रूप से उजागर होते हैं, पहला तथ्य यह है कि नीति-निरूपण में रहीम ने लोकानुभव से काम लिया है। उन्हीं बातों का वर्णन किया है जो उनकी स्वानुभूत है, कल्पना से किसी बात को नहीं कहा है। दूसरा तथ्य यह सामने आता है कि अपने मन्तव्य की पुष्टि में उन्होंने भारतीय रामायण, महाभारत, पुराण आदि ग्रंथों से प्रमाण के लिए उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। इतना सोदाहरण, प्रमाण पुष्ट मर्मस्पर्शी नीति-काव्य किसी दूसरे कवि ने नहीं लिखा। रहीम का नीति-काव्य साधारण जन से लेकर विद्वत्-समाज तक का कंठहार रहा है। रहीम अनेक भाषाओं के साहित्य से परिचित ही नहीं, उनके मर्म के अच्छे जानकार थे किन्तु उन्होंने अरबी, फ़ारसी आदि भाषाओं से अपने साहित्य को समृद्ध नहीं बनाया। हिन्दू धर्म-ग्रंथों से उन्होंने उदाहरण-दृष्टान्त आदि का चयन लोकप्रियता के कारण किया या भारतीय परिवेश में चर्चित होने के कारण, यह विचारणीय है। इसमें कोई संदेह नहीं कि रहीम पूरी तरह भारतीय जन-मानस से जुड़े हुए थे और उनकी संवेदना का प्रसार इतना व्यापक था कि भारत की प्रत्येक वस्तु को वे अपनी चेतना में समेट कर देखते थे।

रहीम की भाषा

रहीम ने जनसाधारण की बोलचाल की तत्कालीन भाषा में भी काव्य-रचना की और लोकप्रियता प्राप्त की। बोलचाल की भाषा का न तो कोई शुद्ध व्याकर-

णिक रूप होता है और न सीमित शब्दकोष। व्यवहार से शब्द बनते हैं और वाक्य-विन्यास चलता है। उस समय इसे लश्करी जुवान कहते थे। बाद में यही लश्करी जुवान उर्दू या हिन्दुस्तानी के रूप प्रचलित हुई। प्रारम्भ में इसे रेखता भी कहा गया। यह फ़ारसी और लश्करी के योग से बनी बोलचाल की सामान्य भाषा थी। इसे साधारण जन भी समझ सकते थे। रहीम ने सेना में शामिल सभी देशों और जातियों के सैनिकों के लिए इस भाषा में कुछ रचनाएँ प्रस्तुत कीं। इस भाषा की पृष्ठभूमि व्रज और अवधी भाषा है।

भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त रहीम को अरबी और तुर्की भाषा का तो अच्छा ज्ञान था ही, कुछ योरोपीय भाषाएँ भी उन्होंने अकबर की प्रेरणा से सीखी थीं। मुंशी देवीप्रसाद ने 'ख़ानख़ानानामा' में रहीम को सप्त-भाषा विद् कहा है। 'अकबरी दरबार' पुस्तक में भी बहु-भाषाविद् होने का उल्लेख है। रहीम ने विभिन्न भाषाओं का ज्ञान अपनी प्रातिभ योग्यता के बल पर अर्जित किया था। अरबी भाषा-ज्ञान के विषय में तो अनेक दन्तकथाएँ प्रसिद्ध हैं। अबुल फ़ज़ल जैसे विद्वान् भी रहीम के भाषा-ज्ञान के प्रशंसक थे। आर.पी. मसानी ने अपनी पुस्तक 'कोर्ट पोइट्स आफ़ ईरान एण्ड इंडिया' में रहीम के अरबी भाषा ज्ञान का उल्लेख किया है। अकबर भी उनके भाषा-ज्ञान से प्रभावित था। इनकी रचनाओं के परिचय-क्रम में भाषा पर विवेचन होगा।

अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना के कला-प्रेम का संकेत पहले किया जा चुका है। संगीत-कला, चित्रकला और स्थापत्यकला के विषय में अनेक किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। तानसेन के संगीत की प्रशंसा में उन्होंने जो दोहा कहा था वह उनके संगीत प्रेम के साथ संगीत-ज्ञान पर भी प्रकाश डालता है। दोहा इस प्रकार है—

विधना यह जिय जानिकै सेसहि दिये न कान।
धरा मेरु सब डोलते तानसेन की तान॥

रहीम को चित्रकला से भी गहरा लगाव था। अपने घर में वे अच्छे-अच्छे कलाकारों द्वारा बनाये गये चित्रों को रखते थे और चित्रकारों को उनकी कला के लिए समुचित पुरस्कार भी देते थे। स्थापत्य कला का प्रमाण तो गुजरात में बनाया बाग़फ़तह, शाहबाड़ी, आगरा की हवेली और अलवर का त्रिपोलिया हैं जो आज भी रहीम के स्थापत्य-कला प्रेम के जीते-जागते निदर्शन हैं।

रहीम : लोक कसौटी पर

रहीम के जीवन काल में तथा उनके निधन के बाद अनेक समकालीन व्यक्तियों तथा परवर्ती कवियों ने उनका यशोगान किया है। उनके प्रतिद्वन्द्वी व्यक्ति भी उनके चारित्रिक गुणों के प्रशंसक थे और उन्होंने रहीम की विद्वत्ता, राजनीतिक योग्यता, युद्ध-कुशलता और कवित्व-शक्ति की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। इन प्रशंसापरक उक्तियों में रहीम का उदात्त चरित्र और वैदुष्य देखा जा सकता है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि गंग रहीम के साथ अकबर के दरबारी कवियों में थे। कवि गंग की रहीम से भेंट होती रहती थी और उनके एक छन्द पर मुग्ध होकर रहीम ने उन्हें लाखों रुपये उपहारस्वरूप दिये थे। जिस छन्द की बहुत चर्चा है वह इस प्रकार है :

चकित भँवर रहि गयो गमन नहिं करत कमलवन।
अहि फनि-मनि नहिं लेत तेज नहिं बहत पवन वन।।
हंस सरोवर तज्यो, चक्क-चक्की न मिले अति।
बहु सुंदरि पद्मनी, पुरुष न चहै न करे रति।।
खलमलित सेस कवि गंग, भनि-अमित तेज रवि रथ खस्यो।
खानानखान बैरम सुबन जिस दिन कोप करि तंग कस्यो।।

अर्थात्—रहीम के युद्धसन्नद्ध होने पर चकित भौंरे चकित होकर कमल-बन में नहीं जाते, सर्प अपनी मणि को त्याग देता है, वायु का प्रवाह मंद हो जाता है। हंस सरोवर त्याग देता है, चकवा-चकवी मिलते नहीं, पद्मिनी नायिका अपने नायक से रति इच्छा से मिलना नहीं चाहती। शेषनाग के दशा खलबलीवाली हो जाती है। तेज पुंज सूर्य का रथ मार्ग स्खलित हो जाता है। यह सब उस दिन होता है जिस दिन खानखाना कुपित होकर अपनी कमर युद्ध के लिए कस लेता है।

खानखाना के भय से शत्रुओं की क्या दशा होती है, इसका वर्णन कई कवित्तों में कवि ने किया है।

नवल नवाब खानखाना जू तिहारी त्रास,
भागे देशपति धुनि सुनत निसान की।
गंग कहै तिनहूँ की रानी रजधानी छाँड़ि,
फिरैं विललानी सुधि भूली खानपान की।
तेउ मिली करिन हरिन मृग वानरानी,
तिनहूँ की भली भई इच्छा तहाँ प्रान की।
सची जानी करिन, भवानी जानी केहरनि,
मृगन कला निधि, पिजजानी जानकी।।

× × ×

नवल नवाव खानखाना जू तिहारे डर,
परी है खलकसैल मैल जहूँ तहूँ जी।
राजन की रजधानी डोली फिरै वन वन,
बैठन को दैउँ बैठे भरे वेटी वहू जी।
चहुँ गिरि राहें परी समुद अया है अब,
कहै कवि गंग चक्रवल्ली और चहूँ जू।
भूमि चली शेष धरि, शेष चल्यो कच्छ धरि,
कच्छ चल्यो कौल धुरि, कौल चल्यौ कहूँ जू।।

कवि केशवदास ने 'जहाँगीर जसचन्द्रिका' में जहाँगीर की प्रशंसा के संदर्भ में रहीम का भी स्मरण किया है। उन्होंने खानखाना को वीर हनुमान, यश के क्षीर-सागर का क्षीर, उदारता और पवित्रता में गंगा जल, दृष्ट दलन में तथा संसार के पालन में रामचन्द्र जी के बाण के समान यश और सामर्थ्य वाला कहा है—

साहिजू की साहिबी को रक्षक अनन्त गति
कीनो एक भगवन्त हनुमंत वीर सों।
जाकौ जस केसौदास भूतल के आस पास,
सोहत छबीले क्षीर सागर के क्षीर सों।
अमित उदार अति पावन विचारि चारु,
जहाँ तहाँ आदरियो गंगाजी के नीर सों।
खलन के घालिवे को, खलक के पालिवे को,
खानखाना एक रामचन्द्र जू में तीर सों।।

हिन्दी के इतिहास-ग्रंथों में आसकरन नामक एक कवि का उल्लेख मिलता है। वह एक चारण था। स्थूल शरीर के कारण उसे जाड़ा नाम से पुकारा जाता था। जाड़ा ने रहीम की प्रशंसा में चार दोहे लिखे। चारों दोहों में खानखाना की गुण प्रशंसा के साथ श्लेष और विरोधाभास की छटा है। इन दोहों को सुनकर रहीम

ने एक-एक दोहे पर एक-एक लाख रुपये भेंट किये। उदाहरणार्थ एक दोहा इस प्रकार है—

खानखाना नवाब रे, खाँडे आग खिवंत।
जलबाला नर प्राजले, तृण बाला जीवन्त॥

दोहे में विरुद्ध धर्म की बात का चमत्कार है। ख़ानख़ाना की तलवार से अग्नि की वर्षा होती है। जो पानीवाला होता है वह जल जाता है और तिनकेवाला होता है वह जीवित रहता है। पानीवाला का अर्थ पराक्रमी पुरुष भी है और तिनकेवाले का अर्थ दाँत में तिनका दबाकर क्षमा या प्रार्थना करनेवाला भी है।

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि मंडन ने भी ख़ानख़ाना की प्रशंसा में एक कवित्त लिखा है—

तेरे गुन खानख़ाना परत दुनी के कान,
ये तेरे कान गुन आपना धरत हैं।
तू तो खगा खोलि खोलि खलन पै कर लेत,
लेत यह तोपै कर नेक न डरत हैं।
मंडन सुकवि तू चढ़त नवखंडन पै,
यह भुज दंड तेरे चढ़िए रहत हैं।
ओहती अटल खान गाहब तुरक मान,
तेरी या कमान लेसों तेहु सों करत हैं॥

हिन्दी के एक कवि संत ने भी रहीम की प्रशंसा में काव्य-रचना की। संत कवि रहीम अपने दरबारी कवियों में माना जाता है। रहीम के बरवै पर संत कवि रचित एक सवैया भी उपलब्ध है। संत कवि का छन्द इस प्रकार है—

सेर सम शील सम धीरज सुमेर सम,
सेर सम साहेब जमाल सरसानी था।
करन कुबेर कलि कीरति कमाल करि,
ताले बन्द मरद दरदमंद दाना था।
दरबार दरस परस दरबैसन को,
तालिब तलब कुल आलम जमाना था।
गाहक गुनी के, सुख चाहक दुनी के बीच,
संत कवि दान को खजाना खानखाना था॥

कवि हरिनाथ जो महापात्र नरहरि के पुत्र थे; रहीम के समकालीन थे। उन्होंने रहीम का एक छन्द में इस प्रकार वर्णन किया है—

बैरम के तनय खानखाना जू के अनुदिन,
दीउ प्रभु सहज सुभाए ध्यान ध्याए हैं।
कहैं हरिनाथ सातों द्वीप कौ दिपति करि,
जोइ खंड करताल ताल सों बजाए हैं।
एतनी भगति दिल्लपति की अधिक देखी,
पूजत नये को भास तातें भेद पाए हैं।
अरि सिर साजे जहाँगीर के पगन तट,
टूटे फूटे फाटे सिव सीस पै चढ़ाए हैं।।

अब्दुर्रहीम खानखाना की दानवीरता, शूरवीरता, उदारता, तेजस्विता और विद्वत्ता की प्रशंसा करनेवाले कवियों में तारा कवि, मुकुन्द कवि, प्रसिद्ध कवि तथा अनेक अज्ञातनामा कवियों की गणना है। परवर्ती काल में भी रहीम की प्रशंसा निरन्तर होती रही। यह इनकी लोकप्रियता का प्रमाण है।

रहीम के विषय में नाना प्रकार की किंवदंतियाँ प्रचलित रही हैं। इनके सत्य-असत्य का निर्णय तो कठिन है किन्तु लोक में इनके बहुप्रचलित होने से यह निष्कर्ष अवश्य निकाला जा सकता है कि रहीम का व्यवहार, उदात्त चरित्र, शील-स्वभाव जन-मानस में प्रसिद्धि पाने योग्य था तभी जनश्रुतियाँ बनीं।

ऐसी सुप्रसिद्ध किंवदंती है कि तानसेन ने अकबर के दरबार में कान्हरा राग में सूरदास का पद गाया, जिसकी टेक थी—'जसोदा बार-बार यों भाखे।' तानसेन ने बार-बार का अर्थ बारम्बार किया। फ़ैज़ी ने अर्थ किया—यशोदा रो-रोकर कहती है। बीरबल ने अर्थ किया बार-बार का अर्थ द्वार-द्वार जाकर कहती है। एक ज्योतिषी ने बार-बार का अर्थ दिन बताया। अन्त में रहीम से अर्थ पूछा गया तो उन्होंने बार-बार का अर्थ बाल-बाल अर्थात् रोम-रोम से यशोदा कहती है, यह बताया। सम्राट अकबर ने पूछा कि बार-बार शब्द के अनेक अर्थ क्यों हैं ? रहीम ने उत्तर दिया कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी मनोवृत्ति और स्वभाव के अनुसार अर्थ करता है। तानसेन तो गायक हैं, उन्हें दरबार में राग को बार-बार गाना पड़ता है इसलिए अपनी मानसिकता के अनुसार अर्थ किया है।

अबुल फ़ैज़ी शायर हैं। इसलिए उनकी मनोवृत्ति में रोना-बिलखना स्वभाव से रहता है अतः बार-बार का अर्थ रोना कर दिया। बीरबल ठहरे ब्राह्मण ! घर-घर घूमते हैं अतः बार-बार का अर्थ द्वार-द्वार बताया। ज्योतिषी तो तिथि-नक्षत्र ही जानते हैं अतः उन्होंने बार का अर्थ दिन कर दिया। मैंने यशोदा के दुःख को प्रकट करने वाले रोम-रोम (बाल-बाल) की बात कही, वही ठीक है। अकबर इस उत्तर से बहुत प्रसन्न और प्रभावित हुआ।

रहीम की उदार मानवता के तो दर्जनों क़िस्से मशहूर हैं। एक ग़रीब व्यक्ति ने रहीम के दरवाज़े पर जाकर कहा कि मैं ख़ानख़ाना का साढ़ू हूँ। दरबान ने ख़ानख़ाना के पास जाकर बताया कि एक दरिद्र व्यक्ति अपने को आपका साढ़ू बता रहा है। रहीम ने उसे भीतर बुलाकर उसका स्वागत-सत्कार किया। तब एक दरबारी ने पूछा कि यह दरिद्र व्यक्ति आपका साढ़ू कैसे हो सकता है ? रहीम ने उत्तर दिया—सम्पत्ति और विपत्ति दो बहनें हैं। एक बहन सम्पत्ति हमारे घर में है और दूसरी विपत्ति इसके घर में। इसीलिए हम दोनों साढ़ू हैं।

रहीम के सम्पूर्ण काव्य का परिशीलन करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जीवन की पाठशाला में पढ़े हुए, स्वानुभूत पाठों को ही रहीम ने दोहे, बरवै और सोरठे के ढाँचे में ढालकर प्रस्तुत किया है। रहीम का काव्य अनुभूति प्रधान काव्य है। दृष्टान्त और उदाहरणों से परिपुष्ट भारतीय संस्कृति की परम्परा में अनुस्यूत रहीम का काव्य किस सहृदय को मुग्ध नहीं करता। यही कारण है कि परवर्ती अनेक कवियों ने रहीम की रचना से भाव-ग्रहण कर अपना काव्य-सृजन किया। रहीम के उपदेश और सीख के दोहे तो अपढ़ जनता में भी अपना स्थान बनाने में सफल हुए हैं। कुछ दोहे तो अन्य कवियों की छाप से भी प्रचलित हो गये हैं। इसका कारण भाव और विचार का आकर्षण तथा कथन शैली की प्रसादगुणमयी भंगिमा ही है। रहीम के काव्य में भाव-वैविध्य, छन्द-वैविध्य, शैली-वैविध्य और विषय-वैविध्य को देखकर आश्चर्य होता है कि ऐसा बहुआयामी रचना संसार उन्हें कैसे सुलभ हो गया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—

> "रहीम ने अपने उदार और ऊँचे हृदय को संसार के वास्तविक व्यवहारों के बीच रखकर जो संवेदना प्राप्त की है उसकी व्यंजना अपने काव्य में की है। तुलसी के वचनों के समान रहीम के वचन भी हिन्दी भाषी-भूभाग में सर्वसाधारण के मुँह पर रहते हैं। इसका कारण है जीवन की परिस्थितियों का मार्मिक अनुभव। रहीम के दोहे वृन्द और गिरधर के पद्यों के समान कोटि के नीति के पद्य नहीं हैं। उनमें मार्मिकता है, उनके भीतर एक सच्चा हृदय झाँक रहा है। जीवन की सच्ची परिस्थितियों के मार्मिक रूप को ग्रहण करने की क्षमता जिस कवि में होगी वही जनता का प्यारा कवि होगा। रहीम का हृदय द्रवीभूत होने के लिए, कल्पना की उड़ान की अपेक्षा नहीं रखता। वह संसार के सच्चे और प्रत्यक्ष व्यवहारों में ही अपने द्रवीभूत होने के लिए पर्याप्त स्वरूप पा जाता था।"

उपसंहार

रहीम ने अपनी शूरवीरता के कारण राजदरबार में अपार यश अर्जित किया था। दानवीरता के कारण जनसाधारण में लोकप्रियता प्राप्त की थी। विद्वत्ता के कारण विद्वत्समाज में कीर्तिपताका फहरायी थी। राजनीति की दुरूह समस्याओं के समाधान के कारण बादशाहों के मध्य विश्वसनीयता के पात्र बने थे। रहीम का चरित्र और लोक व्यवहार समाज में उदात्त समझा जाता था। इसलिए उन्हें सामान्य जन का भी प्रेम और सम्मान सुलभ था। रहीम का जीवन रागात्मक अनुभवों और सांसारिक सम्मानों के साथ कटुतिक्त दंशों और अनादर पूर्ण कष्टों से भी पूरी तरह घिरा रहा लेकिन अपने उच्च और उदात्त विचारों के कारण वे कभी कर्तव्य-पथ से विचलित नहीं हुए। तितिक्षा और सहिष्णुता का संबल लेकर वे कष्टों को झेलते रहे। विपदाओं के बादल घिरते रहे लेकिन रहीम शान्त बने रहे। बहत्तर वर्ष की लम्बी आयु में लगभग पैंतालीस वर्ष उन्हें युद्ध और संघर्ष में काटने पड़े किन्तु उनके धैर्य का बाँध अटूट बना रहा। रणभेरी और तलवारों की झनझनाहट जिसका जीवन संगीत रहा हो वह जीवन के माधुर्य पक्ष को लेकर नीति, भक्ति, रीति और कला को निरन्तर अपने साथ सँजोये रहा, यह कम आश्चर्य की बात नहीं है।

संक्षेप में, रहीम के व्यक्तित्व में हम एक सच्चे भारतीय का उज्ज्वल और उदात्त रूप देख सकते हैं जो जाति, धर्म, वंश और वर्ग के भेदभाव को भूलकर मानव मात्र को बंधुत्व के स्तर पर स्वीकार कर मानवता का पुजारी है। विघ्न-बाधाओं की विशाल पर्वत श्रेणियों को लाँघकर रहीम महामानव के उच्च शिखर पर पहुँचे और मानवता के लिए अनुकरणीय आदर्श छोड़ गये। परदुःखकातर होकर अपना सर्वस्व अर्पित करना जिसका स्वभाव हो, मज़हब की संकीर्ण सीमाओं को तोड़कर जो धर्म की नैतिक व्याख्या में विश्वास करता हो, मानव मानव के बीच प्रेम और सौहार्द के स्नेह सम्बन्ध की स्थापना जिसका उद्देश्य हो उसी महा-मानव का नाम अब्दुर्रहीम खानखाना है। भारतीय संस्कृति और साहित्य में अपने योगदान से उन्होंने जो स्थान बनाया है वह सदैव अमर रहेगा। अपनी टकसाली भाषा और उदात्त भाव-व्यंजना से ऐसी सूक्तियाँ छोड़ गये हैं जो जन-जन के मन में सदा गूँजती रहेगी। भारतीय संस्कृति, साहित्य, कला और सामाजिक मर्यादा के गायक कवि रहीम सांस्कृतिक समन्वय के प्रतीक पुरुष थे। उनका स्मरण विगत चार सौ वर्षों से केवल ऐतिहासिक पुरुष के रूप में ही नहीं वरन् भारत माता के वन्दनीय सपूत के रूप में होता आ रहा है और भविष्य में भी भारतीय जनता उनका स्मरण इसी प्रकार करती रहेगी।

चयन

'रहीम दोहावली' से उद्धृत दोहे

अच्युत-चरण-तरंगिणी, शिव-सिर-मालति-माल।
हरि न बनायो सुरसरी, कीजो इंदव-भाल॥

अनुचित उचित रहीम लघु, करहिं बड़ेन के जोर।
ज्यों ससि के संजोग तें, पचवत आगि चकोर॥

अब रहीम चुप करि रहउ, समुझि दिनन कर फेर।
जब दिन नीके आइ हैं, बनत न लगि है देर॥

अब रहीम मुश्किल पड़ी, गाढ़े दोऊ काम।
साँचे से तो जग नहीं, झूठे मिलैं न राम॥

अमर बेलि बिनु मूल की, प्रतिपालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहिं तजि, खोजत फिरिए काहि॥

अमृत ऐसे वचन में, रहिमन रिसि की गाँस।
जैसे मिसिरिहु में मिली, निरस बाँस की फाँस॥

अरज गरज मानैं नहीं, रहिमन ए जन चारि।
रिनिया, राजा, माँगता, काम आतुरी नारि॥

आप न काहू काम के, डार पात फल फूल।
औरन को रोकत फिरैं, रहिमन पेड़ बबूल॥

उरग, तुरंग, नारी, नृपति, नीच जाति, हथियार।
रहिमन इन्हें संभारिए, पलटत लगै न बार॥

एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।
रहिमन मूलहिं सींचिबो, फूलै फलै अघाय॥

ओछो काम बड़े करैं, तौ न बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमंत को, गिरधर कहै न कोय॥

अंजन दियो तो किरकिरी, सुरमा दियो न जाय।
जिन आँखिन सों हरि लख्यो रहिमन बलि-बलि जाय॥

कदली, सीप, भुजंग-मुख, स्वाति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिए, तैसोई फल दीन॥

कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय॥

करत निपुनई गुन बिना, रहिमन निपुन हजूर।
मानहु टेरत बिटप चढ़ि, मोहि समान को कूर॥

कहि रहीम धन बढ़ि घटे, जात धनिन की बात।
घटै बढ़ै उनको कहा, घास बेंचि जे खात॥

कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहु रीत।
विपति कसौटी जे कसे, ते ही साँचे मीत॥

कहु रहीम केतिक रही, केतिक गई बिहाय।
माया ममता मोह परि, अंत चले पछिताय॥

कहु रहीम कैसे निभै, बेर केर को संग।
वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग॥

काज परै कछु और है, काज सरै कछु और।
रहिमन भँवरी के भए, नदी सिरावत मौर॥

काह करौं बैकुंठ लै, कल्प बृच्छ की छाँह।
रहिमन दाख सुहावनी, जो गल पीतम बाँह॥

कैसे निबहैं निबल जन, करि सबलन सों गैर।
रहिमन बसि सागर बिषे, करत मगर सों बैर॥

कौन बड़ाई जलधि मिलि, गंग नाम भो धीम।
केहि की प्रभुता नहिं घटी, पर घट गये रहीम॥

खीरा सिर तें काटिए, मलियत नमक बनाय।
रहिमन करुए मुखन को, चहिअत इहै सजाय॥

खैर, खून, खाँसी, खुसी, बैर, प्रीति, मदपान।
रहिमन दाबे ना दबें, जानत सकल जहान॥

गहि सरनागति राम की, भवसागर की नाव।
रहिमन जगत उधार कर, और न कछू उपाव॥

चाह गई चिंता मिटी, मनुआ बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिए, वे साहन के साह॥

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध-नरेस।
जा पर बिपदा पड़त है, सो आवत यहि देस॥

छिमा बड़न को चाहिए, छोटन को उतपात।
का रहीम हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात॥

जब लगि बित्त न आपुने, तब लगि मित्र न कोय।
रहिमन अंबुज अंबु बिनु, रवि नाहिन हित होय॥

ज्यों नाचत कठपूतरी, करम नचावत गात।
अपने हाथ रहीम ज्यों, नहीं आपुने हाथ॥

जाल परे जल जात बहि, तजि मीनन को मोह।
रहिमन मछरी नीर को, तऊ न छाँड़त छोह॥

जे गरीब पर हित करैं, ते रहीम बड़ लोग।
कहाँ सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग॥

जे रहीम विधि बड़ किए, को कहि दूषन काढ़ि।
चंद्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत तें बाढ़ि॥

जो घर ही में घुस रहे, कदली सुपत सुडील।
त रहीम तिनतें भले, पथ के अपत करील॥

जो पुरुषारथ ते कहूँ, संपति मिलत रहीम।
पेट लागि वैराट घर, तपत रसोई भीम॥

जो बड़ेन को लघु कहें, नहिं रहीम घटि जांहि।
गिरधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नांहि॥

जो रहीम उत्तम प्रकृत, का करि सकत कुसंग।
चंदन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग॥

जो रहीम ओछो बढ़ै, तौ अति ही इतराय।
प्यादे सों फरजी भयो, टेढ़ो टेढ़ो जाय॥

जो रहीम करिबो हुतो, ब्रज को इहै हवाल।
तौ काहे कर पर धरयी, गोवर्धन गोपाल॥

जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारो लगै, बढ़े अंधेरो होय॥

जो रहीम गति दीप की, सुत सपूत की सोय।
बड़ो उजेरो तेहि रहे, गए अँधेरे होय॥

जो रहीम दीपक दसा, तिय राखत पट ओट।
समय परे ते होत है, वाही पट की चोट॥

जो रहीम तन हाथ है, मनसा कहुं किन जाहिं।
जल में जो छाया परी, काया भीजति नाहिं॥

जो रहीम भावी कतौं, होति आपुने हाथ।
राम न जाते हरिन संग, सीय न रावन साथ॥

जो विषया संतन तजी, मूढ़ ताहि लपटाय।
ज्यों नर डारत वमन कर, स्वान स्वाद सों खाय॥

टूटे सुजन मनाइए, जो टूटे सौ बार।
रहिमन फिरि फिरि पोहिए, टूटे मुक्ताहार॥

तब ही लौ जीबो भलो, दीबो होय न धीम।
जग में रहिबो कुचित गति, उचित न होय रहीम॥

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम पर काज हित, संपति सँचहि सुजान॥

तासों ही कछु पाइए, कीजै जाकी आस।
रीते सरवर पर गये, कैसे बुझै पियास॥

दादुर, मोर, किसान मन, लग्यो रहै घन माँहि।
रहिमन चातक रटनि हू, सरवर को कोउ नाहिं॥

दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखै न कोय।
जो रहीम दीनहिं लखै, दीनबंधु सम होय॥

दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आहिं।
ज्यों रहीम नट कुण्डली, सिमिटि कूदि चढ़ि जाहिं॥

दुरदिन परे रहीम कहि, भूलत सब पहिचानि।
सोच नहीं वित हानि को, जो न होय हित हानि॥

धन थोरो इज्जत बड़ी, कह रहीम का बात।
जैसे कुल की कुलबधू, चिथड़न माँह समात॥

धन दारा अरु सुतन सों, लगो रहे नित चित्त।
नहिं रहीम कोउ लख्यो, गाढ़े दिन को मित्त॥

धनि रहीम गति मीन की, जल बिछुरत जिय जाय।
जिअत कंज तजि अनत बसि, कहा भौंर को भाय॥

धरती की सी रीत है, सीत घाम औ मेह।
जैसी परे सो सहि रहै, त्यों रहीम यह देह॥

नाद रीझि तन देत मृग, नर धन हेत समेत।
ते रहीम पशु से अधिक, रीझेहु कछू न देत॥

परि रहिवो मरिबो भलो, सहिवो कठिन कलेस।
बामन है बलि को छल्यो, भलो दियो उपदेस॥

पात पात को सींचिबो, बरी बरी को लौन।
रहिमन ऐसी बुद्धि को, कहो बरैगो कौन॥

पावस देखि रहीम मन, कोइल साधे मौन।
अब दादुर वक्ता भए, हमको पूछत कौन॥

प्रीतम छबि नैनन बसी, पर छबि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि, पथिक आप फिर जाय॥

प्रेम पंथ ऐसो कठिन, सब कोउ निबहत नाहिं।
रहिमन मैन-तुरंग चढ़ि, चलिबो पावक माहिं॥

बड़े दीन को दुख सुनो, लेत दया उर आनि।
हरि हाथी सो कब हुतो, कहू रहीम पहिचानि॥

बड़े पेट के भरन को, है रहीम दुख बाढ़ि।
यातें हाथी हहरि कै, दयो दाँत द्वै काढ़ि॥

बड़े बड़ाई नहिं तजैं, लघु रहीम इतराइ।
राइ करोंदा होत है, कटहर होत न राइ॥

बड़े बड़ाई ना करैं, बड़ो न बोलें बोल।
रहिमन हीरा कब कहै, लाख टका मेरो मोल॥

बसि कुसंग चाहत कुसल, यह रहीम जिय सोस।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बस्यो परोस।।

बिगरी बात बनै नहीं, लाख करौ किन कोय।
रहिमन फाटे दूध को, मथे न माखन होय।।

बिपति भए धन ना रहे, रहे जो लाख करोर।
नभ तारे छिपि जात हैं, ज्यों रहीम भए भोर।।

भजौं तो काको मैं भजौं, तजौं तो काको आन।
भजन तजन ते बिलग हैं, तेहि रहीम तू जान।।

मनि मानिक महँगे किये, ससतो तृन जल नाज।
याही ते हम जानियत, राम गरीब निवाज।।

मान सहित विष खाय के, संभु भये जगदीस।
बिना मान अमृत पिये, राहु कटायो सीस।।

मुनि नारी पाषान ही, कपि पसु गुह मातंग।
तीनों तारे राम जू, तीनों मेरे अंग।।

यह रहीम निज संग ले, जनमत जगत न कोय।
बैर प्रीति अभ्यास जस, होत होत ही होय।।

यों रहीम सुख दुख सहत, बड़े लोग सह साँति।
उवत चंद जेहि भाँति सो, अथवत ताही भाँति।।

रन, बन, व्याधि, बिपत्ति में, रहिमन मरै न रोय।
जो रच्छक जननी जठर, सो हरि गये कि सोय।।

रहिमन अपने गोत को, सबै चहत उत्साह।
मृग उछरत आकाश को, भूमी खनत वराह।।

रहिमन अब वे बिरछ कहँ, जिनकी छाँह गंभीर।
बागन बिच बिच देखिअत, सेंहुड़, कुंज, करीर।।

रहिमन असमय के परे, हित अनहित ह्वै जाय।
बधिक बधै मृग बानसों, रुधिरे देत बताय॥

रहिमन अँसुआ नैन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारौ गेह ते, कस न भेद कहि देइ॥

रहिमन ओछे नरन सों, बैर भलो ना प्रीति।
काटे चाटै स्वान के, देऊ भाँति विपरीति॥

रहिमन कबहुँ बड़ेन के, नाहिं गर्व को लेस।
भार धरैं संसार को, तऊ कहावत सेस॥

रहिमन कठिन चितान ते, चिंता को चित चेत।
चिता दहति निर्जीव को, चिंता जीव समेत॥

रहिमन को कोउ का करै, ज्वारी, चोर, लबार।
जो पति-राखनहार हैं, माखन-चाखनहार॥

रहिमन छोटे नरन सों, होत बड़ो नहिं काम।
मढ़ो दमामो ना बने, सौ चूहे के चाम॥

रहिमन जिह्वा बावरी, कहि गइ सरग पताल।
आपु तो कहि भीतर रही, जूती खात कपाल॥

रहिमन तीन प्रकार ते, हित अनहित पहिचानि।
पर बस परे, परोस बस, परे मामिला जानि॥

रहिमन थोरे दिनन को, कौन करे मुँह स्याह।
नहीं छलन को परतिया, नहीं करन को व्याह॥

रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिये डारि।
जहाँ काम आवे सुई, कहा करे तलवारि॥

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो छिटकाय।
टूटे से फिर ना मिले, मिले गाँठ परिजाय॥

रहिमन निज मन की बिथा, बन ही राखो गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहैं कोय।।

रहिमन निज संपति बिना, कोउ न बिपति सहाय।
बिनु पानी ज्यों जलज को, नहिं रवि सकै बचाय।।

रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारी कर गहे, मद समुझै सब ताहि।।

रहिमन पर उपकार के, करतं न यारी बीच।
मांस दियो शिवि भूप ने, दीन्हों हाड़ दधीच।।

रहिमन पानी राखिये, बिनु पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरे, मोती, मानुष, चून।।

रहिमन ब्याह बिआधि है, सकहु तो जाहु बचाय।
पायन बेड़ी पड़त है, ढोल बजाय बजाय।।

रहिम यहि संसार में, सब सों मिलिये धाइ।
ना जानैं केहि रूप में, नारायण मिलि जाइ।।

रहिमन याचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात।
नारायन हू को भयो, बावन आँगुर गात।।

रहिमन यों सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अँखियाँ निरखि, आँखिन को सुख होत।।

रहिमन रिस को छाँड़ि कै, करौ गरीबी भेस।
मीठो बोलो नै चलो, सबै तुम्हारो देस।।

रहिमन विद्या बुद्धि नहिं, नहीं धरम, जस, दान।
भू पर जनम वृथा धरै, पसु बिनु पूंछ बिषान।।

रहिमन बिपदाहू भली, जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय।।

रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं।
उनते पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं।।

रहिमन सीधी चाल सों, प्यादा होत वजीर।
फ़रज़ी साह न हुइ सकै, गति टेढ़ो तासीर।।

रीति प्रीति सब सों भली, बैर न हित मित गोत।
रहिमन याही जनम की, बहुरि न संगति होत।।

बरु रहीम कानन भलो, बास करिय फल भोग।
बंधु मध्य धनहीन ह्वै, बसिबो उचित न योग।।

बिधना यह जिय जानि कै, सेसहि दिये न कान।
धरा मेरु सब डोलि हैं, तानसेन के तान।।

बिरह रूप धन तम भयो, अवधि आस उद्योत।
ज्यों रहीम भादों निसा, चमकि जात खद्योत।।

वे रहीम नर धन्य हैं, पर उपकारी अंग।
बाँटनवारे को लगे, ज्यों मेंहदी को रंग।।

समय पाय फल होत है, समय पाय झरि जाय।
सदा रहे नहिं एक सी, का रहीम पछिताय।।

सरवर के खग एक से, बाढ़त प्रीति न धीम।
पै मराल को मानसर, एकै ठौर रहीम।।

सर सूखे पच्छी उड़ै, औरे सरन समाहिं।
दीन मीन बिन पच्छ के, कहु रहीम कहँ जाहिं।।

ससि की सीतल चाँदनी, सुंदर, सबहिं सुहाय।
लगे चोर चित में लटी, घटि रहीम मन आय।।

ससि, सुकेस, साहस, सलिल, मान सनेह रहीम।
बढ़त बढ़त बढ़ि जात हैं, घटत घटत घटि सीम।।

रहिमन जग की रीति, मैं देख्यो रस ऊख में।
ताहू में परतीति, जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं।।

जाके सिर अस भार, सो कम झोंकत भार अस।
रहिमन उतरे पार, भार झोंकि सब भार में।।

रहिमन मोहि न सुहाय, अमिय पिआवै मान बिनु।
बरु विष देय बुलाय, मान सहित मरिबो भलो।।

नगर शोभा (तीस दोहे)

उत्तम जाती ब्राह्मनी, देखत चित्त लुभाय।
परम पाप पल में हरत, परसत वाके पाय।।

रूप-रंग-रति-राज में, खतरानी इतरान।
मानों रची बिरंचि पचि, कुसुम कनक मैं सान।।

पारस पाहन की मनो, धरै पूतरी अंग।
क्यों न होइ कंचन पहू, जो बिलसै तिहि संग।।

कबहुँ दिखावै जौहरिन, हँसि हँसि मानिक लाल।
कबहूँ चख ते च्वै परै, टूटि मुकुत की माल।।

कैथिनि कथन न पारई, प्रेम-कथा मुख बैन।
छाती ही पाती मनो, लिखै मैन की सैन।।

चतुर चितेरिन चित हरै, चख खंजन के भाइ।
द्वै आधौ करि डारई, आधौ मुख दिखराइ।।

पलक न टारै बदन तें, पलक न मारै नित्र।
नेकु न चित तें ऊतरै, ज्यों कागद में चित्र।।

परम रूप कंचन बरन, सोभित नारि सुनारि।
मानों साँचे ढारि कै, बिधिना गढ़ी सुनारि।।

रहसनि बहसनि मन हरै, घेरि घेरि तन लेहि।
औरन को चित चोरि कै, आपुन चित्त न देहि॥

बनिआइन बनि आइ कै, बैठि रूप की हाट।
प्रेम पेक तन हेरि कै, गरुए टारत बाट॥

रँगरेजिन के संग में, उठत अनंग तरंग।
आनन ऊपर पाइयतु, सुरत अंत के रंग॥

बनजारी झुमकत चलत, जेहरि पहिरै पाइ।
वाके जेहरि के सबद, बिरही जिय हर जाइ॥

विरह अगिन निसि दिन धवै, उठै चित्त चिनगारि।
बिरही जियहिं जराइ कै, करत लुहारि लुहारि॥

कलवारी रस प्रेम कों, नैनन भरि भरि लेति।
जोबन मद माती फिरै, छाती छुवन न देति॥

परम ऊजरी गूजरी, दह्यौ सीस पै लेइ।
गोरस के मिस डोलही, सो रस नेकु न देइ॥

नैन कतरनी साजि कै, पलक सैन जब देइ।
बरुनी की ढेरी छुरी, लेह छुरी सो टेइ॥

वेलन तिली सुबासि कै, तेलिन करै फुलैल।
बिरही दृष्टि फिरौ करै, ज्यों तेली को बैल॥

भटियारी अरु लच्छमी, दोऊ एकै घात।
आवत बहु आदर करै, जात न पूछै बात॥

छीपिन छापौ अधर को, सुरंग पीक भरि लेइ।
हँसि हँसि काम कलोल में, पिय मुख ऊपर देइ॥

सकल अंग सिकलीगरिन, करत प्रेम औसेर।
करै बदन दर्पन मनों, नैन मुसकिला फेरि॥

राज करत रजपूतनी, देस रूप की दीप।
कर घूँघट पट ओट कै, आवत पियहिं समीप।।

भाटिन भटकी प्रेम की, हटकी रहै न गेह।
जोबन पर लटकी फिरै, जोरत तरकि सनेह।।

लेत चुराये डोमनी, मोहन रूप सुजान।
गाइ गाइ कछु लेत है, बाँकी तिरछी तान।।

बाँस चढ़ी नट-नंदिनी, मन बाँधत लै बाँस।
नैन मैन को सैन तें, कटत कटाछन साँस।।

बिरही के उर में गड़ै, स्याम अलक की नोंक।
बिरह पीर पर लावई, रकत पियासी जोंक।।

बिरह बिथा खटकिन कहै, पलक न लावै रैन।
करत कोप वहु भाँति ही, धाइ मैन की सैन।।

धुनियाइन धुनि रैन दिन, धरै सुरति की भाँति।
वाको राग न बूझही; कहा बजावै ताँति।।

कोरिन कूर न जानई, पेम नेम के भाइ।
बिरही वाके भौन में, ताना तनत बजाइ।।

निसि दिन रहै ठठेरिनी, साजे भाजे गात।
मुकता वाके रूप को थारी पै ठहरात।।

नैन अहेरी साजि कै, चित पंछी गहि लेत।
बिरही प्रान सचान को, अधर न चाखन देत।।

बाजीगरिन बजार में, खेलत बाजी प्रेम।
देखत वाको रस रसन, तजत नैन व्रत नेम।।

अनमिल बतियाँ सब करैं, नाहीं मलिन सनेह।
डफली बाजै बिरह की, निसि दिन वाके गेह।।

बरवै-नायिका-भेद

लहरत लहर लहिरिया, लहर बहार।
मोतिन जरी किनरिया, बिथुरे बार।।

पहिरति चूनि चुनरिया, भूपन भाव।
नैननि देत कंजरवा, फूलनि ााव।।

सुनि सुनि कान सुरलिया, रागन भेद।
गैल न छाँड़त गोरिया, गनत न खेद।।

तनिक सी नाक नथुनिया, मित हित नीक।
कहति नाक पहिरावहु, चित दै सींक।।

आजु नैन के कजरा, औरे भाँत।
नागर नेह नवेलिया, सुदिने जात।।

खीन मलिन बिखमैया, औगुन तीन।
मोहिं कहत विधुबदनी, पिय मतिहीन।।

मितवा करत बँसुरिया, सुमन सपात।
फिरि फिरि तक तरुनिया, मन पछतात।।

कासो कहौ संदेसवा, पिय परदेसु।
लागेहु चइत न फूले, तेहि बन टेसु।।

जेहि लगि सजन सनेहिया, छुटि घर बार।
आपन हित परिवरवा, सोच परार।।

बैरिन भा अभिसरवा, अति दुख दानि।
प्रातउ मिलेउ न मितवा, भइ पछितानि।।

करिकै सोरह सिंगरवा, अतर लगाइ।
मिलेउ न लाल सहेटवा, फिरि पछिताइ।।

पिय पथ हेरत गोरिया, भा भिनसार।
चलहु न करिहि तिरियवा, तुअ इतबार॥

उठि उठि जात खिरिकिया, जोहत बाट।
कतहुँ न आवत मितवा, सुनि सुनि खाट॥

हरुए गवन नवेलिया, दीठि बचाइ।
पौढ़ि. जाइ पलँगिया, सेज बिछाइ॥

हँसि हँसि हेरि अरसिया, महज सिंगार।
उतरत चढ़त नवेलिया तिय कै बार॥

मितवा चलेउ बिदेसवा, मन अनुरागि।
पिय की सुरत गगरिया, रहि मन लागि॥

बहुत दिवस पर पियवा, आयेउ आज।
पुलकित नवल दुलहिया, कर गृह-काज॥

सघन कुंज अमरैया, सीतल छाँह।
झगरत आय कोइलिया, पुनि उड़ि जाह॥

पिय मूरति चितसरिया, चितवन बाल।
सुमिरत अवधि बसरवा, जपि जपि माल॥

चुप होइ रहेउ संदेसवा, सुनि मुसुकाय।
पिय निज कर बिछवनवा, दीन्ह उठाय॥

बरवै (भक्तिपरक)

बन्दौ विघन - बिनासन, रिधि - सिधि - ईस।
निर्मल बुद्धि-प्रकासन, सिसु ससि सीस॥

भजहु चराचर-नायक, सूरज देव।
दीन जनन सुखदायक, तारन एव॥

ध्यावौं विपद-विदारन, सुअन-समीर।
खल दानव वनजारन प्रिय रघुवीर॥

करत घुमड़ि घन-घुरवा, मुरवा रोर।
लगि रह विकसि अंकुरवा, नन्दकिसोर॥

पीव पीव कहि चातक, सठ अघरात।
करत बिरहिनी तिय के, हिय उतपात॥

सावन आवन कहिगे, स्याम सुजान।
अजहुँ न आये सजनी, तरफत प्रान॥

उमड़ि-उमड़ि घन घुमड़े दिसि बिदिसान।
सावन दिन मनभावन, करत पयान॥

झूमि झूमि चहुँ ओरन, बरसत मेह।
त्यों त्यों पिय बिन सजनी, तरफत देह॥

डोलत त्रिबिध मरुतवा, सुखद सुढार।
हरि बिन लागत सजनी, जिमि तरवार॥

कहियो पथिक संदेसवा, गहि कै पाय।
मोहन तुम बिन तनकहु, रह्यो न जाय॥

मनमोहन बिन तिय के, हिय दुख बाढ़।
आयौ नन्द-ढोठनवा, लगत असाढ़॥

लखि पावस ऋतु सजनी, पिय परदेस।
गहन लग्यौ अबलनि पैं, धनुष सुरेस॥

जदपि बसत है सजनी, लाखन लोग।
हरि बिन कित यह चित को, सुख संजोग॥

जदपि भई जल-पूरित, छितव सुआस।
स्वाति बूंद बिन चातक, मरत पिआस॥

भादों निस अंधिअरिया घर अंधिआर।
बिसर्यो सुघर बटोही, शिव आगार॥

इन बातन कछु होत न, कहो हजार।
सब ही तें हँसि बोलत, नन्द-कुमार॥

ज्यों चौरासी लख में, मानुष देह।
त्यों ही दुर्लभ जग में, सहज सनेह॥

मानुष तन अति दुर्लभ, सहजहि पाय।
हरि-भजि कर सत संगति, कह्यो जताय॥

बिन देखे कल नाहि न, इन अँखियान।
पल-पल कटत कलप सों, अहो सुजान॥

ब्रज-वासिन के मोहन, जीवन-प्रान।
ऊधो यह संदेसवा, अकह कहान॥

मोहि मीत बिन देखे, छिन न सुहात।
पल-पल भरि-भरि उलझत, दृग जलजात॥

जब ते बिछुरे मितवा, कहु कस चैन।
रहत भर्यो हिय साँसन, आँसुन नैन॥

मनमोहन की सजनी, हँसि बतरान।
हिय कठोर कीजत पै, खटकत आन॥

होरी पूजत सजनी, जुर नर नारि।
हरि बिनु जानहु जिय में, दई दवारि॥

जब ते बिछुरे मोहन, भूख न प्यास।
बेरि-बेरि बढ़ि आवत, बड़े उसास॥

अन्तरगत हिय वेधत, छेदत प्रान।
विष सम परम सबन तें, लोचन बान॥

रे मन भज निस बासर, श्री बलबीर।
जो बिन जांचे टारत, जन की पीर॥

विरहिन को सब भाखत, अब जनि रोय।
पीर पराई जाने, तब कहु कोय॥

लखि मोहन की बंसी, बंसी जान।
लागत मधुर प्रथम पे, बेधत प्रान॥

कोटि जतन हू फिरतन, विधि की बात।
चकवा पिंजरे हू सुनि, विमुख बसात॥

नृप जोगी सब जानत, होत बयार।
संदेसन तो राखत, हरि ब्यौहार॥

मोहन जीवन प्यारे, कस हित कीन।
दरसन ही कों तरफत, ये दृग मीन॥

भज मन राम सियापति, रघुकुल ईस।
दीनबंधु दुख टारन, कौसलधीस॥

भज नरहरि, नारायन, तजि बकवाद।
प्रगटि खंभ ते राख्यो, जिन प्रहलाद॥

गोरज-घन-बिच राखत, श्री ब्रजचंद।
तिय दामिनि जिमि हेरत, प्रभा अमंद॥

श्रृंगार-सोरठा

गई आगि उर लाय, आगि लेन आई जो तिय।
लागी नाहिं बुझाय, भभकि भभकि बरि-बरि उठै॥

तुरुक गुरुक भरिपुर, डूबि सुरगुरु उठै।
चातक चातक दूरि, देह दहे बिन देह को॥

दीपक हिए छिपाय, नवल वधू घर ले चली।
कर विहीन पछिताय, कुच लखि जिन सीसै धुनै॥

पलटि चली मुसुकाय, दुति रहीम उपजात अति।
बाती सी उसकाय, मानों दीनी दीप की॥

यक नाही यक पी हिय, रहीम होती रहे।
काहु न भई सरीर, रीति न वेदन एक सी॥

रहिमन पुतरी स्याम, मनहुँ जलज मधुकर लसै।
कैधों शालिग्राम, रूपे के अरधा धरे॥

मदनाष्टक

शरद-निशि निशीथे चाँद की रोशनाई।
सघन वन निकुंजे कान्ह वंशी बजाई॥
रति, पति, सुत, निद्रा, गाइयाँ छोड़ भागी।
मदन-शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥

कलित ललित माला या जवाहिर जड़ा था।
चपल चखन वाला चाँदनी में खड़ा था॥
कटि-तट बिच मेला पीत सेला नवेला।
अलि बन अलबेला यार मेरा अकेला॥

दृग छकित छबीली छैलरा की छरी थी।
मणि जटिल रसीली माधुरी मूँदरी थी॥
अमल कमल ऐसा खूब से खूब देखा।
कहि सकत न जैसा श्याम का हस्त देखा॥

कठिन कुटिल कारी देख दिखदार जुलफें।
अलि कलित बिहारी आपने जी की कुलफें॥
सकल शशिकला को रोशनी-हीन लेखों।
अहह! ग़ज़लला को किस तरह फेर देखों॥

ज़रद बसन-वाला गुल चमन देखता था।
झुक झुक मतवाला गावता रेखता था॥
श्रुति युग चपला से कुण्डलें झूमते थे।
नयन कर तमाशे मस्त ह्वै घूमते थे॥

तरल तरनि सी हैं तीर सी नोकदारें।
अमल कमल सी हैं दीर्घ हैं दिल बिदारें ॥
मधुर मधुप हेरें माल मस्ती न राखें।
विलसति मन मेरे सुन्दरी श्याम आँखें ॥

भुजंग जुग किधौं हैं काम कमनैत सोहैं।
नटवर ! तब मोहैं बाँकुरी मान भौहैं ॥
सुनु सखि ! मृदु बानी बेदुरस्ती अकिल में।
सरल सरल सानी के गई सार दिल में ॥

पकरि परम प्यारे साँवरे को मिलाओ।
अमल अमृत प्याला क्यों न मुझको पिलाओ ॥
इति वदति पठानी मनमथांगी विरागी।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

फुटकर पद

पट चाहे तन पेट चाहत छदन मन,
चाहत है धन, जेती संपदा सराहिबी।
तेरोई कहाय कैं 'रहीम' कहै दीनबंधु,
आपनी विपति जाय काके द्वार काहिबी ॥

पेट भर खायो चाहे, उद्यम बनायो चाहे,
कुटुंब जियायो चाहे काढ़ि गुन लाहिबी।
जीविका हमारी जो पै औरन के कर डारो,
ब्रज के विहारी तो तिहारी कहाँ साहिबी ॥

बड़ेन सों जान पहिचान के रहीम काह,
जों पै करतार ही न सुख देनहार है।
सीत-हर सूरज सों नेह कियो याही हेत,
ताऊ पै कमल जारि डारत तुषार है ॥
नीरनिधि माँहि धस्यो शंकर के सीस बस्यो,
तऊ ना कलंक नस्यो ससि में सदा रहे।
बड़ो रीझिवार है, चकोर दरबार है,
कलानिधि सो यार तऊ चाखत अंगार है ॥

नोहिबो निछोहिबो सनेह में तो नयो नाहिं,
भले ही निठुर भये काहे को लजाइये।
तन मन रावरे सो मतों के मगन हेतु,
उचरि गये ते कहा तुम्हें खोरि लाइये।।
चित लाग्यो जित जैये तितही रहीम नित,
धाधवे के हित इत एक बार आइये।
जान हुरसी उर बसी है तिहारे उर,
मोसों प्रीति बसी तऊ हँसी न कराइये।।

जाति हुती सखि गोहन में मन मोहन कों लखिकै ललचानो।
नागरि नारि नई ब्रज की उनहूँ नंदलाल को रीझिबो जानो।।
जाति भई फिरि कै चितई तब भाव 'रहीम' यहै उर आनो।
ज्यों कमनैत दमानक में फिरि तीर सों मारि लै जात निसानो।।

जिहि कारन बार न लाये कछू गहि संभु-सरासन दोय किया।
गये गेहहि त्यागि के ताही समै सु निकारि पिता बनवास दिया।।
कहे वीच रहीम रर्‌यौ न कछू जिन कीनो हुतो बिनुहार हिया।
विधि यों न सिया रसबार सिया करबार सिया पिय सार सिया।।

दीन चहैं करतार जिन्हें सुख सो तो 'रहीम' टरे नहिं टारे।
उद्यम पौरुष कीने बिना धन आवत आपुहिं हाथ पसारे।।
दैव हँसे अपनी अपनी बिधि के परपंच न जात बिचारे।
बेटा भयो बसुदेव के धाम औ दुंदुभि बजता नन्द के द्वारे।।

कौन धौं सीख रहीम इहाँ इन नैन अनोखि यै नेह की नाँधनि।
प्यारे सों पुन्यन भेंट भई यह लोक की लाज बड़ी अपराधिनि।।
स्याम सुधानिधि आनन को भरिये सखि सूधे चितैवे को साधनि।
ओट किए रहतै न बनै कहतै न बनै बिरहानल नाधनि।।

छबि आवन मोहन लाल की।
काछनि काछे कलित मुरलि कर पीत पिछौरी साल की।।
बंक तिलक केसर को कीने दुति मानो बिधु चाल की।
बिसरत नाहिं सखी मो मन ते चितवनि नयन बिसाल की।।
नीकी हँसनि अधर सधरनि की छबि छीनी सुमन गुलाल की।
जल सों डारि दियो पुरइन पर डोलनि मुकता माल की।।
आप मोल विन मोलनि डोलनि बोलनि मदनगोपाल की।
यह सरूप निरखै सोइ जानै इस रहीम के हाल की।।

कमल-दल नैननि की उनमानि ।
बिरसत नाहिं सखी मो मन ते मंद मंद मुसकानि ।।
यह दसननि दुति चपला हूते महा चपल चमकानि ।
वसुधा की बसकरी मधुरता सुधा-पगी बतरानि ।।
चढ़ी रहे चित उर बिसाल को मुकुतमाल थहरानि ।
नृत्य-समय पीतांबर हू की फहरि फहरि फहरानि ।।
अनुदिन श्री वृन्दावन ब्रज ते आवन आवन जानि ।
अब रहीम चित ते न टरति है सकल स्याम की बानि ।।

संस्कृत श्लोक

आनीता नटवन्मया तव पुरः श्रीकृष्ण ! या भूमिका ।
व्योमाकाशखखांबराब्धिवसवस्त्वत्प्रीतयेऽद्यावधि ।।
प्रीतस्त्वं यदि चेन्निरीक्ष्य भगवन् स्वप्रार्थित देहि मे ।
नोचेद् ब्रूहि कदापि मानय पुनस्त्वेतादृशीं भूमिकाम् ।।

रत्नाकरोऽस्ति सदनं गृहिणी च पद्मा,
किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय ।
राधागृहीतमनसे मनसे च तुभ्यं,
दत्तं मया निजमनस्तदिदं गृहाण ।।

अहल्या पाषाणः प्रकृतियशुरासीत् कपिचमू-
र्गुहो भूच्चांडालस्त्रितयमपि नीतं निजपदम् ।।
अहं चित्तनाश्मा पशुरपि तवार्चादिकरणे ।
क्रियाभिश्चांडालो रघुवर नमामुद्धरसि किम् ।।

दृष्टवा तत्र विचित्रतां तरुलतां, मैं था गया बाग में ।
काचित्तत्र कुरंगशावनयना, गुल तोड़ती थी खड़ी ।।
उन्मद्भ्रूधनुषा कटाक्षविशिखैः घायल किया था मुझे ।
तत्सीदामि सदैव मोहजलधौ, हे दिल गुजारो शुकर ।।

एकस्मिन्दिवसावसानसमये, मैं था गया बाग में ।
काचित्तत्र कुरंगबालनयना, गुल तोड़ती थी खड़ी ।।
तां दृष्ट्वा नवयौवनां शशिमुखीं, मैं मोह में जा पड़ा ।
नो जीवामि त्वया विना श्रृण्, प्रियेत् यार कैसे मिले ।।

अच्युतच्चरणातरंगिणि शशिशेखर-मौलि-मालतीमाले।
मम तनु-वितरण-समये हरता देया न मे हरिता॥
भतां प्राची गतो मं, बहुरि न बगदे, शूं करूँ रे हवे हूँ।
माझी कमाचि गोष्ठी, अब पुन शुणसि, गाँठ धेलो न ईठे॥
म्हारी तीरा सुनोरा, खरच बहुत है, ईहरा टाबरा रो।
दिट्ठी टैंडी दिलों दो, इश्क अल् फ़िदा, ओडियो बच्चनाडू॥

परिशिष्ट

ग्रंथ-सूची

1. रहीम रत्नावली — मायाशंकर याज्ञिक, साहित्य सेवा सदन, बनारस
2. रहिमन विलास — ब्रजरत्नदास, साहित्य सेवा सदन, बनारस
3. रहिमन विनोद — अयोध्याप्रसाद शर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
4. रहीम — (सं०) रामनरेश त्रिपाठी, हिन्दी मन्दिर, प्रयाग
5. रहिमन विलास — राधाकृष्णदास—रहीम के दोहों पर कुंडलियाँ, बनारस
6. रहिमन शतक — (सं०) लाला भगवानदीन, बनारस
7. रहिमन चन्द्रिका — (सं०) रामनाथ सुमन, इलाहाबाद
8. खेटकौतुकजातकम् — टीकाकार पं. नारायणप्रसाद सीताराम शर्मा
9. बरवै नायिकाभेद — (सं०) नकछेदी तिवारी, भारत जीवन प्रेस, कानपुर
10. रहीम कवितावली — (सं०) सुरेन्द्रनाथ तिवारी, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
11. रहीम ग्रंथावली — (सं०) डॉ. विद्यानिवास मिश्र, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
12. खानखाना नामा — मुंशी देवीप्रसाद, भारत मित्र प्रेस, कलकत्ता

सहायक ग्रंथ-सूची

1. अकबरनामा — अबुल फ़ज़ल
2. हुमायूँनामा — गुलबदन बेगम
3. आईने अकबरी — अबुल फ़ज़ल
4. तबकाते-अकबरी — निज़ामुद्दीन
5. तुजुकेजहाँगीरी — जहाँगीर
6. मआसिरे रहीमी — अब्दुलबाकी

7. अकबरी दरबार — रामचन्द्र वर्मा, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस
8. महान् मुग़ल अकबर — विसेंट स्मिथ, (अनुवाद) हिन्दी समिति, लखनऊ
9. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास — भाग पाँचवाँ, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस
10. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि — डॉ. सरयू प्रसाद अग्रवाल, लखनऊ
11. भक्तमाल — नाभादास
12. भारत का संक्षिप्त इतिहास — डॉ. ईश्वरीप्रसाद

रहीम (अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना : 1556-1627) का जन्म लाहौर में हुआ। यह वह समय था जब उसके पिता बैरम खाँ ने अकबर को लाहौर की राजगद्दी पर विधिवत् बैठाकर राजतंत्र अपने हाथ में ले लिया था। छोटी-बड़ी लड़ाइयों, शाही फ़रमानों, राजनैतिक षड्यन्त्रों और पारिवारिक विपत्तियों के बीच पले-बढ़े रहीम ने तुर्की और फ़ारसी समेत विभिन्न भारतीय भाषाओं का अध्ययन किया और ग्यारह वर्ष की छोटी उम्र में ही काव्य-रचना प्रारंभ कर दी। शस्त्र, शास्त्र और लोक-व्यवहार को रहीम ने अपने कर्म, लेखन और जीवन-दर्शन में उतार लिया था और अपनी सूझबूझ तथा योग्यता से केवल अकबर के दरबार में ही नहीं अपितु साहित्य-सृजन के क्षेत्र में भी अपना विशिष्ट स्थान बना लिया था। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं : **दोहावली, नगर शोभा, बरवैनायिका भेद, वरवै, शृंगार सोरठा और मदनाष्टक**। सदियों से लोककंठ में विद्यमान उनके दोहों के कई संस्करण प्रकाशित हैं। जाति, धर्म और देश की सीमाओं का उन्होंने अपनी काव्यात्मक रचनाओं द्वारा जिस उदात्त शैली से अतिक्रमण किया, वह संस्कृति-पुरुष का आदर्श कहा जा सकता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, " तुलसी के वचनों के समान रहीम के वचन भी हिन्दी भाषी भू-भाग में सर्वसाधारण के मुँह पर रहते हैं। इसका कारण है जीवन की परिस्थितियों का मार्मिक अनुभव। जीवन की सच्ची परिस्थितियों के मार्मिक रूप को ग्रहण करने की क्षमता जिस कवि में होगी वही जनता का कवि होगा। रहीम का हृदय द्रवीभूत होने के लिए कल्पना की उड़ान की अपेक्षा नहीं रखता। वह संसार के सच्चे और प्रत्यक्ष व्यवहारों में ही अपने द्रवीभूत होने के लिए पर्याप्त स्वरूप पा जाता था।"

प्रस्तुत विनिबंध के रचयिता डॉ. विजयेन्द्र स्नातक हिन्दी के वरिष्ठ आलोचक और सुपरिचित लेखक हैं। आपने पचीस से भी अधिक कृतियों का लेखन एवं संपादन किया है। आप अखिल भारतीय स्तर पर हिन्दी के उन्नयन एवं उत्कर्ष के लिए कार्यरत संस्थाओं से सक्रिय रूप से जुड़े हुए हैं और अपनी साहित्य-सेवाओं के लिए पुरस्कृत एवं सम्मानित हो चुके हैं। आप साहित्य अकादमी के हिन्दी परामर्श मण्डल के सदस्य हैं। रहीम के सम्पूर्ण रचनाकर्म को समझाने के लिए यह पुस्तिका न केवल महत्त्वपूर्ण बल्कि अनिवार्य है।

पन्द्रह रुपये